साक्षात्कार

डॉ. विकास दवे
सम्पादक

ISSN : 2456-1924

साक्षात्कार

जनवरी, 2021
अंक : 487

सम्पादकीय एवं ग्राहकीय पत्र-व्यवहार : निदेशक/सम्पादक, साहित्य अकादमी, संस्कृति भवन, बाणगंगा, भोपाल-462003

फ़ोन : 0755 - 2554782 (कार्यालय)

साक्षात्कार की प्रकाशनार्थ रचनाओं के लिए
email : sakshatkarnew@gmail.com पर मेल करें।
web : http://mpsahityaacademy.com पर भी पढ़ सकते हैं।

वार्षिक सहयोग राशि
व्यक्तिगत ग्राहकों के लिए : ₹ 250
संस्थाओं के लिए : ₹ 300
आजीवन : ₹ 3,000

यह अंक : ₹ 25 (रजिस्टर्ड डाक खर्च अतिरिक्त)
समस्त बैंक ड्रॉफ्ट/मनीआर्डर '**निदेशक, साहित्य अकादमी, भोपाल**' के नाम स्वीकार्य होंगे।

आवरण : अमरजीत कुमार

रेखांकन : संदीप राशिनकर, इंदौर

आकल्पन : राकेश सिंह

मुद्रण : मध्यप्रदेश माध्यम, अरेरा हिल्स, भोपाल

'साक्षात्कार' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार अपने हैं। सम्पादक या साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन का उनके विचार के प्रति सहमत होना आवश्यक नहीं है।

साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश का मासिक प्रकाशन

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय // 05

बातचीत

आईवर यूशिएल से // 07

आलेख

डॉ. बिनय षडंगी राजाराम सामाजिक समरसता और संत कवि महामति प्राणनाथ // 19

डॉ. भागीरथ कुमरावत स्वामी विवेकानंद का सामाजिक सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय अवदान // 23

भारत यायावर वसंत पंचमी का भी गणित होता है? // 27

यशवंत चौहान रामचरित मानस : लोकोक्तियों एवं काव्यसूक्तियों के संदर्भ में // 29

डॉ. शोभा जैन समकालीनता के साहित्यिक संदर्भ : पुनरावलोकन // 32

डॉ. शैलेन्द्रकुमार शर्मा युग-द्रष्टा और स्रष्टा दिनकर : कविता और जीवन में सामरस्य की साधना // 36

डॉ. प्रभा पन्त अखण्ड ज्योति में प्रतिबिम्बित मानवीय मूल्य // 41

जितेन्द्र निर्मोही आख्यायिकाओं की आख्यायिका है 'वेदवती' उपन्यास // 48

डॉ. रामकिशोर उपाध्याय भारतीय साहित्य में वैचारिक प्रतिबद्धता : भ्रांतियाँ और सत्य // 51

डॉ. शारदा मेहता प्राचीन और आधुनिक गुरुकुलों में शिक्षण व्यवस्था // 59

अखिलेश आर्येन्दु मूल्यपरक कविता के संवाहक कर्ण सिंह 'कर्ण' // 63

दुर्गाप्रसाद श्रीवास्तव वाचिक शुद्धता // 73

कविता

जगदीश 'जोशीला' बेटियाँ // 77

सीताराम गुप्ता मरण // 80

राजीव कुमार तिवारी तुम लौट कर आओगी // 83

बृजेश सिंह एक तितली की मृत्यु // 88

गोवर्धन यादव उदास नदी पर सात कविताएँ // 90

कहानी

कान्ता रॉय जिया जले जाँ जले // 92
गायत्री यादव 'मेहतरानी' अम्मा // 103
सनातन कुमार वाजपेयी उसूल // 104

लघुकथा

बलराम अग्रवाल तीसरा आदमी // 108
सतीश राठी काला कानून // 110

समीक्षा

डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया जीवन यात्रा का पूरा दस्तावेज है आत्मकथा : अटकते-भटकते // 111
कृष्णवीर सिंह सिकरवार 'मुफ्त की कीमत' // 115
गोपाल माहेश्वरी अग्निगर्भा काव्यकृति है टंकार // 117
चिट्ठी // 120

संपादकीय

एक आत्मीय आग्रह आप सबसे

आत्मीय बंधु/भगिनी गण,

सादर प्रणाम।

नवीन अंक आपके हाथों में है। कोरोना की दूसरी लहर ने हम सब के कार्यों को पहली लहर की तुलना में और अधिक प्रभावित किया है। विशेषकर 'प्रिंट मीडिया' की स्थिति इस बार पहले की तुलना में और अधिक खराब हुई है, जो हम सभी पत्रकार साहित्यकार मित्रों के लिए दु:खद है। इसका मूल कारण यह भी रहा कि इस बार का 'लॉकडाउन' संपूर्ण भारतवासियों के लिए मनोरंजन का कारण कम और मानसिक त्रास का कारण अधिक बना। स्वाभाविक रूप से इस बार हम सबने जितने परिजनों और साहित्यकारों को खोया है संभवत: इतनी हानि इससे पहले हमने कभी नहीं उठाई थी। साक्षात्कार के कई अंक तैयार रखे थे, किंतु उनके मुद्रण की व्यवस्था सुचारू नहीं बन पाई। इस कारण प्रति सप्ताह एक अंक तैयार करके आपके हाथों में सौंपने का हमारा स्वप्न धराशाई हो गया। 'प्रिंटिंग प्रेस' बंद थी और हम सब मजबूर होकर घरों में कैद। पुन: अब एक नई ऊर्जा के साथ हम इस कार्य में लगे हैं। अगले महीनों में बहुत जल्दी-जल्दी आपके हाथों में पिछले अप्रकाशित अंक पहुँचा सकें यह प्रयास ईमानदारी पूर्वक करेंगे।

मित्रो, जब बात होती है, साहित्यिक पत्रिकाओं के संपादन की, तब स्वाभाविक रूप से हममें से प्रत्येक रचनाकार इस बात को समझता है कि इन दिनों साहित्यिक पत्रिकाओं का संपादन करना एक टेढ़ा काम हो गया है। विशेषकर इन दिनों 'सोशल मीडिया' के अत्यधिक प्रचलन के कारण हम सभी रचनाकारों की रचनाएँ करोड़ों हाथों में साढ़ें तीन इंच की स्क्रीन पर बड़ी आसानी से पहुँच रही हैं।

इस सबके बीच एक विभीषिका बहुत तेजी से हम सब को परेशान कर रही है। यह त्रासदी है रचनाओं की चोरी की। आज हमारी रचनाओं को अनेक प्रकार से हमारे नाम को हटाकर उपयोग करने की दुष्ट प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। 'व्हाट्सएप' और 'फेसबुक' पर पढ़े-लिखे लोग जब यह कह कर एक लंबी कविता प्रेषित करते हैं कि यह कविता प्रेमचंद जी की लिखी हुई है तो सचमुच सिर पकड़ कर बैठने को मन करता है। इतना ही नहीं इन दिनों एक नए प्रकार का 'संपादन आतंकवाद' जन्म ले रहा है। रचनाकारों की रचनाओं को इधर-उधर से वैसा का वैसा 'कट-पेस्ट' करके अपनी पत्रिकाओं में

प्रकाशित कर पत्रिका के संपादक स्वयं अपनी पीठ थपथपा लेते हैं, किंतु उन रचनाओं पर से जिस मूल रचनाकार का नाम उन्होंने हटा दिया है वे बेचारे अपनी रचनाओं को बगैर नाम के छपा देखकर संपादक महोदय को मन ही मन क्या-क्या कहते होंगे इसकी हम कल्पना कर सकते हैं। व्यक्तियों के द्वारा व्यक्तियों की रचनाओं की चोरी करके अपने नाम से भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकाओं को प्रेषित कर देना अथवा 'व्हाट्सएप' और 'फेसबुक' पर अपने नाम से अन्य रचनाकारों की रचनाओं का उपयोग कर लेना इन दिनों फैशन सा बन गया है। मेरी करबद्ध प्रार्थना प्रत्येक गंभीर लेखन करने वाले मौलिक रचनाकारों से है कि कृपा कर हम सब मिलकर एक युद्ध का शंखनाद करें। इस तरह की रचना चोरी के प्रकरणों पर कठोरता पूर्वक सार्वजनिक भर्त्सना चाहे वह पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हो अथवा 'सोशल प्लेटफॉर्म' पर करने का प्रयास करें।

सौभाग्य से 'साक्षात्कार' पत्रिका को तो आप सब वरिष्ठ रचनाधर्मियों की मौलिक और श्रेष्ठ रचनाओं का प्रसाद प्राप्त होता है और मेरा यह सौभाग्य है कि मैं आपकी इन रचनाओं को गुणवत्ता के आधार पर चयनित कर संपूर्ण भारत में पूरी श्रद्धा के साथ 'साहित्यिक प्रसाद' के रूप में वितरित कर देता हूँ। साक्षात्कार में मेरी आप सब रचनाकारों से जो अपेक्षा है, वह अपेक्षा प्रख्यात रचनाकार पी.आर. हालमोस ने अपनी एक कविता में व्यक्त की थी। सौभाग्य से मेरे गृह नगर इंदौर के प्रख्यात रचनाकार श्रद्धेय प्राध्यापक महेश दुबे जी ने उस रचना का बड़ा ही सुंदर भावानुवाद करके मुझे प्रेषित किया है। मैं हालमोस जी की मूल रचना के इस सुंदर अनुवाद को अपने संपादकीय का हिस्सा बना कर गौरवान्वित अनुभव कर रहा हूँ। साथ ही इस कविता के भाव को अपनी अपेक्षा बनाकर आप सबके मानस तक पहुँचा रहा हूँ। आशा है मेरे मनोभावों को आप इस कविता के माध्यम से समझेंगे और तदनुसार अपनी श्रेष्ठ रचनाएँ साक्षात्कार में भेजते रहेंगे। प्रस्तुत है यह भावपूर्ण आग्रह।

सदैव सा

डॉ. विकास दवे
संपादक

अपनी पत्रिका के शीर्षक के अनुरूप भारत भर के वरिष्ठ रचनाकारों से संवाद स्थापित करते हुए साक्षात्कार लेकर उनकी साहित्य यात्रा और रचना कर्म से अन्य रचनाकारों को परिचित करवाना यह इस स्तम्भ का मुख्य हेतु रहेगा। यूँ तो 'साक्षात्कार' पत्रिका अपने नाम के अनुरूप इस तरह के साक्षात्कारों का पहले भी प्रकाशन करती रही है किंतु इसमें एक प्रयोग प्रारंभ किया है। विगत दिनों भारतीय साहित्यिक पत्रकारिता के संदर्भ में एक पुस्तक पढ़ते हुए श्रद्धेय माखनलाल चतुर्वेदी जी और धर्मवीर भारती जी के संबंध में एक आलेख पढ़ते हुए यह ध्यान में आया था कि कोई भी साहित्यकार पत्रिका का संपादक बनते ही अपने आप को एक अलग पाले में खड़ा कर लेता है और रचनाकारों को दूसरे पाले में खड़ा कर देता है। यदि संपादक और रचनाधर्मियों के बीच सीधा संवाद स्थापित करने की सुचारू व्यवस्था बन जाए तो स्वाभाविक रूप से वह साहित्यिक पत्रिका साहित्यकार पाठकों के लिए भी अत्यंत आत्मीय हो जाती है। बस इसी बात को ध्यान में रखकर यह सोचा है कि पत्रिका में संपादकीय का आकार भले थोड़ा छोटा रहे किंतु मैं स्वयं चर्चा करके वरिष्ठ रचनाकारों के साक्षात्कार लूँ और उन्हें आप सबके समक्ष रखूँ। इस बहाने मेरा तो प्रशिक्षण होगा ही आप सब भी इन रचनाकारों के जीवनानुभवों से बहुत कुछ प्राप्त कर सकेंगे। इसी शृंखला में प्रस्तुत है यह साक्षात्कार।–सम्पादक

आईवर यूशिएल से डॉ. विकास दवे की बातचीत

प्रारंभ से अब तक मेरी तो यही धारणा रही है कि मेरी इन पुस्तकों की अकल्पनीय सफलता के पीछे जो मुख्य कारण रहा, वह था देश के सुदूर अंचल में बसी इस विकसित होती पीढ़ी के अंदर नई-नई जानकारियाँ पाने की ललक, जो अन्यथा उपयुक्त साधनों के अभाव में समय के साथ धीरे-धीरे दम तोड़ देती हैं। एक सर्वेक्षण के आधार पर यह तथ्य ज़रूर सामने आया कि विषय और इसके प्रस्तुतीकरण ने बच्चों को इन पुस्तकों की ओर आकर्षित कर इन्हें अपनाने के लिए प्रेरित किया और प्रकाशक द्वारा प्रयोग में लाई गयी वी.वी.पी. प्रणाली ने पाठकों के दरवाज़ों तक इन पुस्तकों को पहुँचाकर इन्हें सर्वसुलभ बनाने का एक नया विकल्प खोला।

डॉ. विकास दवे : आपकी पारिवारिक पृष्ठभूमि और शिक्षा के बारे में बताइए।

आईवर यूशिएल : व्यक्ति के जीवन पर इस बात का बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ता है कि उसका जन्म कहाँ हुआ और बचपन किस माहौल में बीता। इस मामले में मैं बहुत सौभाग्यशाली रहा क्योंकि मेरी जन्मस्थली बना इलाहाबाद (अब प्रयागराज) जैसा शहर जो धर्म, साहित्य और राजनीति के दिग्गजों के लिये जाना जाता है और इसके बाद बाल्यावस्था व्यतीत हुई कृष्ण की क्रीड़ास्थली के रूप में विश्वविख्यात नगरी वृन्दावन में।

जहाँ तक परिवार की बात है, मेरी माँ एक अत्यंत सुशिक्षित, सुसंस्कृत एवं बहुआयामी व्यक्तित्व की महिला थीं जिनकी साहित्य व कला में उतनी ही दक्षता थी जितना हिन्दी व अंग्रेज़ी भाषाओं पर अधिकार। पिता इलेक्ट्रिकल इंजीनियर थे और जैसा कि भारतीय परिवारों में प्राय: एक परम्परा रही है,

पिता की इच्छा के अनुरूप उनके पदचिन्हों पर चलते हुए मुझे भी इंजीनियरिंग की ही शिक्षा लेनी पड़ी।

डॉ. विकास दवे : शिक्षा इंजीनियरिंग के क्षेत्र में और कार्यक्षेत्र बाल-विज्ञान लेखन?

आईवर यूशिएल : जी हाँ, अपनी रुचि के विपरीत इंजीनियरिंग के क्षेत्र में शिक्षा तो ले ली पर कला और साहित्य के प्रति जो रुचि और रुझान मुझे माँ से संस्कारगत मिला था, उसके प्रभाव ने भी तो अपना रंग दिखाना ही था न! वैसे भी जब तक मैं अपनी शिक्षा पूरी कर पाता, मेरे पिता का साया मेरे सिर से उठ चुका था। इसके बाद अकेली माँ के मनोबल के सहारे मैंने न सिर्फ़ अपनी शिक्षा पूरी की बल्कि कई जगह नौकरी के प्रयास भी किये पर इस बीच मैं और मेरी माँ, दोनों ही यह बात समझ चुके थे कि किसी के मातहत के रूप में एक बँधी-बँधाई दिनचर्या में रहकर कार्य कर पाना मेरी फ़ितरत में नहीं है। बस इसी आधार पर मुझे उनसे इज़ाज़त मिल गयी और मैं सन 1970 में एक आर्टिस्ट व डिज़ाइनर बनने का सपना सँजोये उत्तर प्रदेश से दिल्ली आ पहुँचा।

डॉ. विकास दवे : पर अपने इस इच्छित क्षेत्र में सफलता न मिलने का क्या कारण रहा?

आईवर यूशिएल : वास्तव में तो मुझे एक चित्रकार व डिज़ाइनर के रूप में ही सफलता पाने की इच्छा थी पर दिल्ली जैसे बिलकुल अपरिचित महानगर में बिना किसी आर्थिक आधार के एक बिलकुल नए क्षेत्र में अपनी जगह बना पाना आसान नहीं था। यह तो कहिये की इस नए शहर में पहले से स्थापित मेरी विवाहिता अग्रजा के पूरे परिवार का इस दिशा में मुझे ऐसा स्नेहपूर्ण सहयोग मिला जो इस महासंग्राम के प्रारंभिक दौर में मेरी ताक़त बना।

नियति का करिश्मा देखिये की डिजाइनिंग की शुरुआत ही ऐसी शख्सियत के साथ हुई जिन्हें शिक्षा के क्षेत्र में डॉ. निर्मला जैन के नाम से जाना जाता है। लोककला आधारित शैली पर निर्मित ग्रीटिंग कार्ड्स के इन डिज़ाइनों से शुरू हुआ कला क्षेत्र का मेरा सफ़र प्रगति मैदान के अन्तर्राष्ट्रीय मेलों में मंडपों की आन्तरिक सज्जा के लिए स्वर्ण पदक बटोरते, कला दीर्घाओं में अपनी बटिक पेंटिंग की प्रदर्शनियाँ लगाते व व्यापारिक स्तर पर इन्हें विदेशों में निर्यात करने की स्तरीय उपलब्धियाँ हासिल करते अपने लक्ष्य की प्राप्ति में पूरी तरह सफल हो पाता कि इस बीच माँ कैंसर का शिकार हो गईं और इस तरह माँ के रूप में मेरे केवल एक रिश्ते का अंत नहीं हुआ बल्कि मेरी आध्यात्मिक गुरु, वित्तीय सलाहकार, अन्तरंग मित्र, व्यावसायिक सहयोगी व निष्पक्ष आलोचक जैसे अनेक सम्बन्धों का भी अंत हो गया। जहाँ एक सम्बन्ध टूटने पर ही संवेदनशील व भावनात्मक व्यक्ति बुरी तरह बिखर जाता हो, वहाँ एक साथ इतने संबंधों की मौत से उपजे विषाद के भाव का अंदाज़ा आसानी से लगाया जा सकता है। इस हादसे ने मुझे ऐसी मानसिक स्थिति में पहुँचा दिया था जहाँ मेरे मस्तिष्क में बस एक ही स्वर गूँजता रहता और वह था 'अब किसके लिए और क्यों?'

डॉ. विकास दवे : फिर बाल-लेखन की शुरुआत कैसे हुई?

आईवर यूशिएल : विषाद के इस दौर में डिज़ाइनिंग और पेंटिंग्स के निर्माण कार्य पर पूरा ध्यान केन्द्रित कर पाना मुश्किल था। पर मैं कुछ और सोच पाता, इसी बीच दैवयोग से मुझे दिल्ली के एक प्रकाशन संस्थान 'पुस्तक महल' का बच्चों के लिए पुस्तकें तैयार करने का प्रस्ताव मिला। उस परिस्थिति में यह एक ऐसा अप्रत्याशित प्रस्ताव था जिसमें मेरी लेखनी और तूलिका को लगातार क्रियाशील रखने

का आश्वासन तो था ही, पर साथ ही पुस्तक पूरी करने के लिए प्रकाशक की ओर से मेरे लिए समय सीमा की भी कोई बाध्यता नहीं रखी गयी थी। उस समय की परिस्थितियों के अनुकूल यह वाकई एक अद्भुत व अनोखा अवसर था जो नियति ने मानो मुझे मेरी क्षति की पूर्ती हेतु सहानुभूतिवश दिया था। चूँकि पिछली जमा पूँजी समाप्त हो चली थी और स्वाभिमान के साथ जीविकोपार्जन तो करना ही था अत: बेमन मुझे इसे स्वीकारना पड़ा। बेमन इसलिये कि लेखन का क्षेत्र मुझे कभी भी प्रतिष्ठापूर्ण नहीं लगा और फिर बच्चों के लिये लिखना तो मुझे ऐसा लगता जैसे यह कोई बचपनेवाला काम हो।

मैं अपने अनुभव के आधार पर यह बात दृढ़ता से कह सकता हूँ कि इंसान केवल प्रयास कर सकता है पर रास्ते नियति ही तय करती है। तब ही तो बहुत बार ऐसे रास्तों पर चलना इंसान की मजबूरी बन जाती है जिन पर चलने के बारे में न तो उसने कभी सोचा होता है और न हीं उस पर चलने की उसकी इच्छा रही होती है। पर फिर भी उसे चलना पड़ता है क्योंकि नियति द्वारा यह पूर्व निर्धारित होता है।

बस समझिये बाल-विज्ञान लेखन के क्षेत्र में मेरा प्रवेश नियति का ऐसा ही एक निर्णय था जिसके अंतर्गत उसने मेरे लिए दूसरे सारे दरवाज़े बंद कर दिये और छोड़ा तो केवल यही रास्ता जिस पर चलना मेरी मजबूरी बन गया। उस समय मैं भला यह सोच भी कहाँ सकता था कि जिस क्षेत्र को केवल अस्थायी तौर पर अपनाने का मैं विचार कर रहा हूँ, आगे चलकर वही मेरी ज़िंदगी का एक एकमात्र और स्थायी मिशन बन जायेगा।

डॉ. विकास दवे : पहली पुस्तक कब और कैसे प्रकाशित हुई?

आईवर यूशिएल : मैंने बताया न कि पहली पुस्तक 'हम जीव-जन्तु' परिस्थितियों के दबाव व प्रकाशक के ठोस प्रस्ताव के कारण मजबूरी में बड़ी अनिच्छा से किसी तरह पूरी की। आत्म कथात्मक शैली में पचास जीव-जन्तुओं द्वारा उनके अपने स्वयं के गुण-दोषों का बखान करती इस पुस्तक को बाल-पाठकों ने शायद इसमें समाहित लेखों के शीर्षकों की वजह से ही उठाया।

'तैरता टापू तेल का, किस्सा मुझ व्हेल का', 'भीतर से नाज़ुक बाहर कड़ी, सीपी हूँ मैं मोती जड़ी', 'रेशम देता मैं रेशम का कीड़ा, झेलकर स्वयं मौत की पीड़ा', 'क्षण में दुश्मन कर दूँ ढेर, ऐसा हूँ मैं बब्बर शेर', 'मुझ मेन्टिस की बात, जुड़े हाथ शिकार की घात' और 'थल पर बसता जल भाता, मैं पेन्गुइन पक्षी कहलाता' जैसे शीर्षकों में उन्हें कुछ ऐसा नयापन और ताज़गी लगी, जिसके बारे में लिखते समय तो मैंने सोचा भी नहीं था।

पर कहते हैं न कि सब कुछ वैसा ही नहीं होता जैसा इंसान अपने लिए चाहता है। मुझे भी उस समय की परिस्थितियों के दबाव और प्रकाशक के एक ऐसे ठोस प्रस्ताव के कारण इसी राह पर आगे कदम बढ़ा देने को बाध्य होना पड़ा जिसके अन्तर्गत मेरी लेखनी और तूलिका दोनों को ही लगातार काम देते रहने का उसकी ओर से आश्वासन दिया गया था। तब भला मुझे यह कहाँ पता था कि जिस मार्ग पर मैं बिल्कुल बेमन से आगे बढ़ रहा हूँ, उसी पर भविष्य में पूरी एकाग्रता से चलना मेरे जीवन का एक मात्र ध्येय बन जाएगा।

डॉ. विकास दवे : पहली पुस्तक अपने वास्तविक नाम रवि लायटू से पर इसके बाद छद्मनाम रखकर आइवर यूशिएल बन जाने के पीछे क्या उद्देश्य रहा?

आईवर यूशिएल : मेरी केवल यही पहली पुस्तक मेरे वास्तविक नाम के साथ प्रकाशित हुई। इसके बाद मुझे अपने लिए छद्मनाम रखने की क्या ज़रूरत पड़ गई, यह एक लम्बी कहानी है। संक्षेप में कहूँ तो प्रकाशक ने मुझसे पहली पुस्तक लिखाई और फिर इस पुस्तक की व्यावसायिक सफलता शायद उसकी अपेक्षा के अनुरूप न होने के कारण उसने मुझसे दूसरी एक और पुस्तक लिखाकर एक तरह से पिछले नुकसान की भरपाई का प्रयास करना चाहा। इस बार विषय '101 मैजिक ट्रिक्स' उसकी अपनी पसन्द पर आधारित था और चूँकि इस पुस्तक के विषय से न तो मेरी रुचि और रुझान का कहीं लेना-देना था, न ही इसकी अप्रत्याशित सफलता का मुझे ज़रा-सा भी आभास था, हालाँकि व्यावसायिक संभावनाओं के मद्देनजर अप्रत्यक्ष रूप से मैं अपने को पुस्तक के साथ जोड़े भी रखना चाहता था। बस इसीलिये मेरे इस छद्मनाम के विचार की उत्पत्ति हुई और मैंने अपने वास्तविक नाम की अंग्रेजी वर्तनी को पल्टा जिससे बाल-विज्ञान के क्षेत्र में एक नए लेखक आइवर यूशिएल का प्रादुर्भाव हो गया।

डॉ. विकास दवे : इस विदेशी-से लगने वाले नाम का कुछ लाभ भी मिला?

आईवर यूशिएल : इस बात में कोई शक नहीं कि यह छद्मनाम भारतीय-सा न लगकर पूरी तरह विदेशी लगता है और इसलिए शायद इसका कुछ लाभ भी मिला हो क्योंकि हमारे यहाँ यह धारणा बड़ी प्रबल है कि विदेशी लेखकों की किताबें अधिक प्रामाणिक होती हैं। पर इससे ज़्यादा रोचक बात यह रही कि मेरे बाल-पाठक मुझे अधिकतर रशियन समझकर पत्रों के माध्यम से यह पूछा करते थे कि मैं इतनी अच्छी हिन्दी कैसे लिख लेता हूँ, यह भाषा मैंने वहीं सीखी या हिन्दुस्तान आकर?

डॉ. विकास दवे : लेखन के क्षेत्र में स्थापित होने के लिए संघर्ष का एक लंबा दौर बिताना पड़ता है पर आपकी '101' श्रृंखला वाली मैजिक ट्रिक्स, साइंस गेम्स व साइंस एक्सपेरिमेंट्स जैसी बिलकुल शुरुआती पुस्तकों ने ही आपको देशभर के बाल-पाठकों का चहेता बना दिया। यह कैसे संभव हुआ?

आईवर यूशिएल : स्कूल की प्रारंभिक कक्षाओं में विज्ञान और गणित - ये दो ही ऐसे विषय थे जिनसे मैं बेहद घबराता था। बाद में परिस्थितियों के दबाव के कारण इन विषयों पर विशेष ध्यान देना पड़ा और तब मैं वास्तविक अर्थों में इनका महत्व और उपयोगिता समझ पाया। देशभर में आज भी हज़ारों ऐसे बच्चे हैं जो इन दोनों विषयों से बेहद घबराते हैं। इसीलिये जब इस नयी पीढ़ी के लिए मुझे लिखने का प्रस्ताव मिला तो इन विषयों के प्रति अपने मन में समाये बेबुनियाद भय से अपने बाल-पाठकों को मुक्त करने की भावना मेरी इन पुस्तकों का आधार बन गयी और इसीलिये बाल-पाठकों ने अपनी समस्या के समाधान के तौर पर इन्हें खुले दिल से अपनाया और मुझे इतना प्यार दिया। मेरा यह प्रयास क्योंकि सर्वथा नवीन था और प्रकाशक का देश के दूर दराज़ के इलाकों तक पहुँच का दायरा बहुत विस्तृत, अत: यह एक तरह से मणि-कंचन योग बन गया और हमारा प्रयास बेहद सफल सिद्ध हुआ।

दूसरी बात यह कि प्राणी जगत के छोटे-बड़े विभिन्न सदस्यों के ऊपर आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई पहली पुस्तक 'हम जीव-जन्तु' के बाद विज्ञान और गणित जैसे रूखे-सूखे विषयों के प्रति रुचि जगाने वाली '101 साइंस गेम्स', '101 साइंस एक्सपेरिमेंट्स' व '101 मैजिक ट्रिक्स' जैसी मेरी पुस्तकों ने बिक्री के जो नये आयाम स्थापित किये वे इसलिए कि इन पुस्तकों को सिर्फ़ पुस्तकालयों में खपाने के विचार से तैयार नहीं किया गया था और न हीं अपने अंदर लेखक होने का दंभ पालने के लिए,

बल्कि हर दृष्टिकोण से इन्हें बाल-पाठकों की रुचि और उनके रुझान के अनुरूप ढाला गया था ताकि अप्रत्यक्ष रूप में 'चीनी चढ़ी दवाई' की तरह ज्ञान को उनके अंदर पहुँचाया जा सके और शायद इसीलिए इन्हें बच्चों ने बेहद पसंद किया।

एक बात और! प्रारंभ से अब तक मेरी तो यही धारणा रही है कि इन पुस्तकों की अकल्पनीय सफलता के पीछे जो मुख्य कारण रहा, वह था देश के सुदूर अंचल में बसी इस विकसित होती पीढ़ी के अंदर नई-नई जानकारियाँ पाने की ललक, जो अन्यथा उपयुक्त साधनों के अभाव में समय के साथ धीरे-धीरे दम तोड़ देती है। एक सर्वेक्षण के आधार पर यह तथ्य ज़रूर सामने आया कि विषय और इसके प्रस्तुतीकरण ने बच्चों को इन पुस्तकों की ओर आकर्षित कर इन्हें अपनाने के लिए प्रेरित किया और प्रकाशक द्वारा प्रयोग में लाई गयी वी.वी.पी. प्रणाली ने पाठकों के दरवाज़ों तक इन पुस्तकों को पहुँचाकर इन्हें सर्वसुलभ बनाने का एक नया विकल्प खोला।

डॉ. विकास दवे : पठन-पाठन में बच्चों की रुचि बढ़े और पुस्तकों की ओर बच्चों का झुकाव हो इस दिशा में आपके क्या प्रयास रहे?

आईवर यूशिएल : नयी पीढ़ी में पढ़ने की प्रवृत्ति बनी रहे इसके लिए पहली आवश्यकता तो यह है कि पुस्तकों को पाठकों तक पहुँचाया जाए ताकि उन्हें पुस्तकें सहज में उपलब्ध हो जाएँ बजाय इसके कि इन पाठकों का पुस्तकों तक पहुँचने का हम रास्ता देखते रहें।

पुस्तकों के साथ बाल-पाठकों की आत्मीयता बढ़े इसके लिए मैंने एक पहल भी की। राजनेताओं और प्रशासनिक अधिकारियों के स्थान पर अपनी पुस्तकों का विमोचन बच्चों द्वारा शुरू कराने वाला शायद मैं पहला लेखक हूँ जिसने सन 2007 के विज्ञान दिवस पर इस परम्परा की शुरुआत की थी। किसी आयोजन में पुस्तक का विमोचन करने के उपरान्त केवल एक बच्चा अपने को गौरवान्वित महसूस नहीं करता वरन इस तरह बहुत से बच्चे पुस्तक के महत्व से परिचित होकर भावनात्मक रूप से इसके साथ एक लगाव-सा महसूस करने लगते हैं और इस तरह दोनों के बीच निकटता की संभावना बढ़ती है और समाज में एक बेहतर सन्देश जाता है।

बच्चों में पठन-पाठन की प्रवृत्ति जागृत करने के विचार से ही प्रेरित होकर दिल्ली में देश की पहली साप्ताहिक हिंदी बाल फीचर सेवा 'ज्ञाशिम' की नींव डाली गयी थी, इस विचार के साथ कि इसके ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण फ़ीचर्स बिना अतिरिक्त व्यय किये समाचारपत्रों के माध्यम से बच्चों तक पहुँचकर उन्हें रोचक सामग्री उपलब्ध करायेंगे और यह प्रयास वास्तव में बहुत सफल भी रहा।

डॉ. विकास दवे : 'ज्ञाशिम' के बारे में थोड़ा और विस्तार से बताएँ।

आईवर यूशिएल : 'पुस्तक महल' द्वारा प्रकाशित मेरी प्रारम्भिक पुस्तकें एक दशक पूरा होने से बहुत पहले ही देश भर में जल पर तेल की बूँद की तरह लाखों की संख्या में न केवल सर्वत्र फ़ैल गयीं वरन बाल-पाठकों द्वारा अभूतपूर्व ललक के साथ अपनाई भी गयीं।

आश्चर्य की बात यह है कि ये पुस्तकें मुख्यत: उस पाठक वर्ग को आकर्षित कर रही थीं जो आर्थिक रूप से इतना कमज़ोर था कि पंद्रह रुपये की किताब भी अकेले नहीं खरीद सकता था। एक ओर इस पाठक वर्ग की यह आर्थिक विवशता थी तो दूसरी ओर इन पुस्तकों को पाने की उसकी ललक व

लगन ऐसी जिसके अंतर्गत तीन-तीन, चार-चार बच्चों द्वारा संयुक्त रूप से मिलकर इन्हें खरीदने का अपने समाज में शायद पहली बार एक नया चलन ही प्रारम्भ हो गया था।

मेरे लिए यह समाचार पीड़ादायक था पर पुस्तकों को सस्ती दर पर उन तक पहुँचाने का कोई माध्यम न उपलब्ध करा पाने की मेरी अपनी विवशता थी और इसके विकल्प स्वरूप ही मैंने इस पठन सामग्री को समाचारपत्रों व बाल-पत्रिकाओं के माध्यम से उन तक पहुँचाना प्रारम्भ तो किया पर सम्बंधित विभागों में इन लेखों के प्रकाशन की प्रक्रिया में प्राय: चित्रों के न बन पाने से हुए विलम्ब और कभी कमज़ोर प्रूफ रीडिंग के कारण तिथियों और तथ्यों के साथ हुई गड़बड़ी से इन लेखों की प्रामाणिकता पर प्रश्न चिह्न लगते रहते। बस, उसी समस्या के निराकरण के लिये 'ज्ञाशिम' नाम से दिल्ली में हिन्दी की पहली साप्ताहिक बाल फीचर सेवा शुरू की गयी जिसके अन्तर्गत समाचारपत्रों में उनके कॉलम के अनुरूप बालोपयोगी विविध विषयों से संबंधित सात फीचर्स चित्रों के साथ सुन्दर ले-आउट में पूरी तरह तैयार कर प्रकाशनार्थ हर सप्ताह प्रेषित किये जाते ताकि इस माध्यम से बच्चों को बिना अतिरिक्त खर्चे के पठनीय सामग्री घर बैठे मिल सके।

गणित और विज्ञान जैसे विषयों को खेल-खेल में बच्चों के बीच लोकप्रिय बनाने का यह न केवल एक नया तरीका था वरन् 'शुगर कोटेड फॉर्म' में ज्ञान-विज्ञान को उन तक पहुँचाने का यह एक सफल माध्यम भी बना जिसका देशभर के प्रतिष्ठित समाचारपत्रों तक ने खुले दिल से स्वागत किया। केवल साप्ताहिक तौर पर ही नहीं वरन् कई समाचारपत्रों ने तो स्थायी स्तम्भ के रूप में प्रतिदिन एक फ़ीचर देना शुरू कर दिया जिसका सिलसिला लम्बे समय तक चला। इस सन्दर्भ में यह कहना भी असंगत नहीं होगा कि बाल पाठकों के मामले में बिहार और समाचारपत्रों के मामले में आपका मध्य प्रदेश सर्वोपरि रहा।

एक बात और भी बताना ज़रूरी है कि 'ज्ञाशिम' अपने आप में कोई स्वतंत्र शब्द नहीं है। यह वास्तव में ज्ञानवर्धक, शिक्षाप्रद व मनोरंजक - इन तीन शब्दों के प्रथम अक्षरों का संयुक्त रूप है और जब तक यह तीनों गुण समाहित न हों, मुझे लगता है ऐसे बाल साहित्य की न कोई सार्थकता और न ही कोई उपयोगिता।

डॉ. विकास दवे : बाल-पाठकों को शायद आकर्षित करने के लिए आपने चित्र आधारित पठन-सामग्री की रचना बहुतायत से की है। इसकी प्रेरणा कहाँ से मिली?

आईवर यूशिएल : मैं बहुत सौभाग्यशाली रहा कि लेखन के क्षेत्र में प्रवेश के साथ ही मुझे विश्वविख्यात रिप्ले की 'बिलीव इट और नॉट' नामक पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद करने का सौभाग्य मिला। 198 देशों में भ्रमण कर रिप्ले ने जो आश्चर्यजनक तथ्य एकत्रित किये थे, उन्हें इस पुस्तक में चित्रों के साथ सम्मिलित किया गया है। औसतन एक पृष्ठ पर सचित्र तीन-चार तथ्य समाहित हैं। मैं इस विधा से बहुत प्रभावित हुआ। मुझे लगा कि जिन आश्चर्यजनक तथ्यों को एकत्रित करने के लिए रिप्ले को इतने सारे देशों का भ्रमण करना पड़ा, वैसे विस्मयकारी अजूबे तो हमारे देश में जगह-जगह बिखरे पड़े हैं। बस ज़रूरत है तो उनको खोजकर प्रस्तुत करने भर की और इस विचार से उत्साहित होकर मैंने गंभीरता के साथ अपनी इस योजना को प्रायोजित किये जाने के लिए कई सम्बंधित सरकारी-ग़ैर सरकारी विभागों व

संस्थाओं को प्रस्ताव प्रेषित किये। कई जगह बात कुछ इतने आगे तक भी बढ़ी कि मंज़िल पास आती लगने लगी पर अंत में मेरे इसी विश्वास को दृढ़ता मिली कि इस देश में सब कुछ संबंधों और संपर्कों के आधार पर ही संभव है और बस, मुझे अपनी दिशा बदलनी पड़ी।

ऐसी पुस्तक जिसमें चित्रों का आकर्षण हो और साथ में पढ़ने के लिए छोटी-छोटी पठन सामग्री तो यह स्वाभाविक रूप से अनइच्छुक पाठकों को भी अपनी तरफ़ आकृष्ट कर लेगी, इसमें कोई संशय नहीं। मुझे इससे जो प्रेरणा मिली ठीक उसी तरीके को आधार बना कर 'विज्ञान चर्चा', 'रोचक सत्य', 'जीव-जन्तुओं का अद्भुत संसार' जैसे बहुत सारे चित्रित फ़ीचर्स मैंने बच्चों के लिये तैयार किये जिन्हें पत्र-पत्रिकाओं ने हाथों-हाथ अपनाया।

अपने अनुभव के आधार पर ही मैंने यह भी पाया कि आज का बच्चा जिस तरह लम्बे भाषण सुनना पसन्द नहीं करता, वैसे ही लम्बी कथा-कहानियाँ भी उसे रास नहीं आतीं। इस तरह चित्रों में सजी छोटी-छोटी जानकारियों को इस नई पीढ़ी के सामने पेश करके मैंने उनमें पढ़ने की प्रवृत्ति जागृत करने का जो प्रयास किया वह वास्तव में एकतरह से कॉमिक्स का ही बदला हुआ रूप था। अन्तर इतना ही था कि ऊलजलूल बातों की जगह इसमें ज्ञान-विज्ञान का संचार किया जा रहा था। काश कि विज्ञान लोकप्रियकरण के क्षेत्र में लगी तमाम सरकारी-ग़ैरसरकारी संस्थायें इस विधा के साथ पुस्तकें तैयार करतीं तो वे ऐतिहासिक व पौराणिक चरित्रों पर आधारित अमर चित्र कथा प्रकाशन की तरह ही विज्ञान को बच्चों के बीच लोकप्रिय बनाने के अपने लक्ष्य में निश्चित रूप से सफलता के उच्चतम सोपान पर होतीं।

डॉ. विकास दवे : देशभर के बच्चों से आपको हज़ारों की संख्या में पत्र मिलते रहे हैं। इन पत्रों में मुख्य बातें क्या होती हैं और इनके आधार पर निकले निष्कर्ष के तौर पर आप क्या कहेंगे?

आईवर यूशिएल : सच कहूँ तो इन पत्रों ने ही मुझे इस क्षेत्र में टिकाये रखा। अपनी जिज्ञासा शांत करने और जानकारी हासिल करने के लिए शायद नयी पीढ़ी के इन सैकड़ों सदस्यों को न तो अपने किसी परिवारजन का सहारा था और न हीं अध्यापक वर्ग में से किसी का। इसीलिये हर तरह के मसलों को हल करने के लिए मीलों दूर बैठे वे मुझसे पत्रों के माध्यम से संपर्क करते और वह भी इतने आत्मीयतापूर्ण आत्मविश्वास के साथ कि हरेक को उत्तर न दे पाने की विवशता में मुझे बस मन मसोस कर रह जाना पड़ता।

मैं भी क्या करता? हर बच्चे को चाहते हुए भी पत्रोत्तर न दे पाने की मेरी अपनी विवशता थी। एनिड ब्लायटन की तरह एक भारतीय बाल-लेखक पाँच-पाँच छोड़ एक भी स्टेनोग्राफ़र नहीं रख सकता, यह बात तो बच्चे नहीं जानते न! पर जो भी हो मेरे इन बाल-पाठक मित्रों से मिले सुझाव, सलाह, सम्मति और सटीक आलोचनाओं के आगे मैं हमेशा नतमस्तक रहा हूँ और जीवनपर्यंत आभारी रहूँगा क्योंकि अपने इन्हीं दोस्तों की वजह से मुझे जीवन जीने का एक सार्थक उद्देश्य मिल सका।

डॉ. विकास दवे : विज्ञान लेखक के अलावा आप एक सिद्धहस्त चित्रकार भी हैं और अपनी तमाम किताबों के रेखाचित्र आपने स्वयं ही बनाये हैं। बटिक कला क्या है और इस क्षेत्र में आपकी क्या उपलब्धियाँ रहीं?

आईवर यूशिएल : बाल–विज्ञान के क्षेत्र में मै जो भी अर्जित कर सका हूँ वह निश्चित तौर पर चित्रकार होने के नाते ही संभव हुआ है अन्यथा मेरे पास कोई विशेष योग्यता नहीं है सिवाय विज्ञान की थोड़ी-सी जानकारी, हिंदी-अंग्रेज़ी भाषाओं का ठीक–ठीक ज्ञान और, कुछ नया करने की चाहत के। साहित्य और कला की जितनी–सी भी समझ है वह माँ से विरासत में मिली है, वह भी अपनी अर्जित की हुई नहीं है और इसीलिये मैं किसी गलतफ़हमी में नहीं रहता। हाँ, यह ज़रूर है कि कुल मिला कर यह संयोजन बाल–विज्ञान के क्षेत्र में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ इसीलिये बस यहाँ अपनी गाड़ी चल गई।

बटिक के बारे में संक्षेप में कहूँ तो यह कला का एक सशक्त माध्यम है जिसमें कपड़े पर सीधे रंग न लगा कर पहले गरम पिघली हुई मोम ब्रश से लगाई जाती है। मुझे यह माध्यम बेहद रुचिकर लगता है क्योंकि इसमें सम्पूर्ण रचनात्मकता कलाकार की नहीं होती वरन मौसम और वातावरण की बराबर की भागीदारी रहती है। मेरी संघर्ष यात्रा के शुरुआती दस वर्ष इसी पर नए–नए प्रयोग करते बीते और इसी बटिक की बदौलत डी.एस.आई.डी.सी. के माध्यम से न्यूयॉर्क के वर्ल्ड ट्रेड फेयर में कई वर्ष तक भारत का प्रतिनिधित्व किया।

डॉ. विकास दवे : अपने लेखन संसार के अनुभवों के बारे में पाठकों को बताएँ।

आईवर यूशिएल : लेखन के आधार पर जीविकोपार्जन के बारे में सोचना इस देश में रेत में नाव चलाने जैसा प्रयास है और जब बच्चों के लिये लिखना हो तो यह काम कहीं अधिक कठिन हो जाता है। तब ही तो अधिकतर हिन्दी अधिकारी, प्रोफेसर, अध्यापक या शिक्षा विभाग से संबंधित नौकरियाँ करने वाले दूसरे सरकारी कर्मचारी, पार्ट टाइम या फिर पास टाइम के तौर पर इसे अपना लेते हैं जिसका या तो मकसद होता है महज़ शौक़ या फिर सम्बन्धों और सम्पर्कों को साधकर पुरस्कारों और सम्मानों का जुगाड़ करके समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करना।

समर्पित भाव से पूर्णकालिक लेखन दरिद्रता और भुखमरी को आमन्त्रण देने जैसा है और ऐसा भला कौन चाहेगा। डॉक्टर, इंजीनियर, आर्मी अफ़सर व पायलेट बनने की चाह रखने वाले हज़ारों बच्चे मिल जाएँगे पर क्या कभी सुना है किसी बच्चे को यह कहते कि वह लेखक बनना चाहता है। हाँ, यह बात और है कि जब जीवन में वह कुछ बन जाता है तो फिर साहित्यकार होने का दम्भ पालने और अपने अहम् की संतुष्टि के इरादे से पुस्तकें भी छपाने लगता है पर वह अच्छी तरह जानता है कि इसके सहारे ज़िन्दगी नहीं चलती और न ही ज़िन्दगी जीने के लिये यह उसका मुख्य उद्देश्य होता है।

जहाँ तक विज्ञान लेखन की बात है, यह एकाग्रता ही नहीं प्रामाणिकता भी माँगता है और जब मामला बाल–विज्ञान लेखन से जुड़ा हो तो पूर्ण सतर्कता और भी आवश्यक हो जाती है जिसके लिये अतिरिक्त श्रम व समय व्यय होता है। वहीं दूसरी ओर प्रकाशक के लिये लेखक सूखी घास खाकर भरपूर दूध देने वाली गाय जैसा है। पुस्तकों के दाम आसमान पर और रायल्टी का भुगतान ज़मीदोश बल्कि कहें कि आजकल तो लेखक के खर्च पर ही किताबें छापने का पूरीतरह चलन हो गया है। अब तो इस क्षेत्र में प्रवेश करने वाला मोटी आमदनी का स्रोत अपने लिये कहीं और से रखे या फिर मिशन के तौर पर इस क्षेत्र में आये वर्ना पछताने के अलावा कुछ नहीं मिलेगा। माँ के विछोह में मेरे लिये तो यह मिशन बनकर जीवन जीने का एक मात्र उद्देश्य बन गया इसलिये बात बन गयी अन्यथा तो 'बड़ी कठिन है डगर पनघट की'।

डॉ. विकास दवे : आपने अपनी लेखनी केवल बच्चों के लिए ही चलायी है या हम जैसे पाठकों के लिए भी कुछ है आपके ख़ज़ाने में?

आईवर यूशिएल : सच तो यह है कि समाज में बच्चों के प्रति कर्तव्यबोध की भावना मुझे इन्हीं के लिए लिखने को लगातार प्रेरित करती रही है जिसके साथ ही मैंने इस क्षेत्र की समस्याओं, सुझावों व सुधारों की संभावनाओं से सम्बंधित लेख भी लिखे जो समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में स्थान पाते रहे। इन सबको एकत्रित करके लॉकडाउन के दौरान जो ख़ाली समय मिला उसमें आप जैसे विद्व पाठकों के लिए ही 'मेरा बाल विज्ञान लोकप्रियकरण' के नाम से मैंने इन्हें एक संकलन का रूप दिया है जो ऑनलाइन उपलब्ध है।

इसके साथ ही कुछ समय के लिए एक दौर ऐसा भी आया था जब मैंने आविष्कार व विज्ञान प्रगति जैसी पत्रिकाओं के लिए विज्ञान कथाएँ लिखी जो बाद में पुस्तकाकार रूप में किताब घर द्वारा प्रकाशित की गई। वैसे मैं तो यह मानता हूँ कि तथ्यों पर आधारित मेरा समस्त चित्रित साहित्य आप जैसे पाठकों को भी वही आनंद देगा जैसा इससे बच्चों को मिलता है।

डॉ. विकास दवे : आपकी पुस्तकों की अकल्पनीय बिक्री और इनके माध्यम से अपने बाल-पाठकों के बीच अपार लोकप्रियता हासिल करने के बावजूद आप अपने प्रयासों से संतुष्ट नज़र नहीं आते, ऐसा क्यों?

आईवर यूशिएल : मैं स्पष्ट कहूँ तो इस क्षेत्र में मैं नाम-दाम कमाने नहीं आया था और यदि यही आशय होता तो पेंटिंग व डिजाइनिंग का मेरा रंग-बिरंगा ग्लैमरस संसार क्या बुरा था। अपने जीवन में विषाद का दौर किसी तरह बिताना था इसलिए कुछ समय के लिए इस क्षेत्र को अपना लिया था पर यहाँ ज्ञान-विज्ञान अर्जित करने बैठी पूरी पीढ़ी को देखकर मुझे अपना जीवन जीने का एक सार्थक उद्देश्य मिल गया। बस, इसी लक्ष्य के साथ इनकी ज्ञान पिपासा को तृप्त करने के लिए लेखन का जो सिलसिला चला वह आज तक जारी है।

यहाँ इस सन्दर्भ में अपना यह मनोभाव प्रकट कर देना भी असंगत नहीं होगा कि बाल-पाठकों में विज्ञान लोकप्रियकरण की बयार बहाने की शुरुआत ही सन 1981 से जिन पुस्तकों के साथ हुई हो, जिनकी बिक्री के आँकड़े चौंकानेवाले हों, जिनमें से कई पुस्तकों का भारतीय भाषाओं में ही नहीं बल्कि विदेशी भाषाओं तक में अनुवाद हुआ हो और जिन शुरुआती पुस्तकों की चालीस साल बाद आज तक माँग हो ऐसे प्रयास के प्रति सरकारी और सामाजिक संस्थाओं द्वारा बरती गई उपेक्षा प्रयासकर्ता के मन में निराशा का भाव नहीं भरेगी तो क्या उत्साह का अनुभव करायेगी?

विज्ञान का मुख्य आधार है प्रयोग और बच्चों के बीच खेल-खेल में ऐसे प्रयोगों की प्रस्तुति जो विज्ञान के मूल सिद्धान्तों पर आधारित हो एक तरह से विषय के साथ उनकी दोस्ती कराने का सफलतम तरीका है और इसी भाव से प्रस्तुत मेरी पुस्तकों ने अपने उद्देश्य में कितनी अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की यह इनकी बिक्री के आँकड़ों और देशभर के 60-70 हज़ार बाल-पाठकों द्वारा प्रेषित पत्रों से स्वयं सिद्ध है और यह सब उस दौर में शुरू हो गया जब देश में कहीं विज्ञान लोकप्रियकरण की चर्चा तो क्या, उसकी सुगबुगाहट तक नहीं थी। ऐसे में पूरे प्रयास के बावजूद तमाम संरकारी और गैर-सरकारी संस्थानों में से

किसी का भी ध्यान ऐसे प्रयासों की ओर न जाना क्या दर्शाता है, आप ही बतायें!

इसी आधार पर इन संस्थाओं से जुड़े उच्च पदासीन अधिकारियों को गान्धारी-पुत्र की पदवी देते हुए मैंने अपनी पुस्तक 'मेरा बाल-विज्ञान लोकप्रियकरण' इन्हीं को समर्पित भी की है। समय मिले तो पढ़िएगा अवश्य।

डॉ. विकास दवे : भारत में विज्ञान लेखन और विज्ञान लोकप्रियकरण पर आपकी टिप्पणी?

आईवर यूशिएल : मैं चूँकि बाल-विज्ञान लेखन के साथ जुड़ा हूँ अतः केवल बाल-विज्ञान लेखन और लोकप्रियकरण के स्तर तक ही सीमित रहकर कुछ कहने का अधिकारी हूँ। सन 1981 से मैंने इस क्षेत्र में अपना कार्य प्रारंभ किया था और तब से केवल इसी पर पूरे समर्पित भाव से कार्य करता आ रहा हूँ। अंदाज़े से कहूँ तो इस बीच विज्ञान लोकप्रियकरण के मद में सरकार के ख़जाने से करोड़ों रुपये ख़र्च हो चुके होंगे पर आज तक इसके कोई सार्थक परिणाम देश या समाज को मिले हों ऐसा मुझे तो नज़र नहीं आया।

सरकारी खर्च पर जगह-जगह विज्ञान-जत्थे और मार्च निकाले गए, देश की परिक्रमा करती विज्ञान-रेल दौड़ाई गयीं, बाल-विज्ञान कांग्रेस के बड़े-बड़े आयोजन संपन्न होते रहे और केवल जिले-जिले में विज्ञान-क्लब की स्थापना ही नहीं हुई वरन विज्ञान प्रसार जैसी संस्थाओं के साथ-साथ न जाने कितने सरकारी विभागों के साथ भी विज्ञान लोकप्रियकरण हेतु सेल बना दिए गए जिस पर किसी को ऐतराज़ भी नहीं होना चाहिए क्योंकि आखिरकार हम अब 21वीं शताब्दी में आ चुके हैं। पर आश्चर्य तो इस बात का है कि ग्लिसरीन से पत्तियाँ चमकाने के चक्कर में हम पौधे की जड़ को ही पानी देना भूल गए।

क्या यह आवश्यक नहीं था कि इन सब सतही आयोजनों से पहले या कम से कम इनके साथ-साथ अपनी नयी पीढ़ी के अलग-अलग आयु वर्ग के अनुसार इनके बौद्धिक विकास के लिए खेल-खेल में विज्ञान के सिद्धांतों को समझाती, आकर्षक और रोचक किस्म की बाल-विज्ञान पत्रिकाएँ प्रकाशित की जातीं? क्या यह संभव नहीं था कि साधारण कीमत पर बच्चों के लिए कुछ ऐसी पत्रिकाएँ सर्वसुलभ होतीं जिनमें 'खेल-खेल में विज्ञान' की अवधारणा पर चीनी चढ़ी दवाई की तरह उपयोगी व पठनीय सामग्री, सुंदर ले-आउट व आकर्षक चित्रों के साथ सजाकर प्रस्तुत की जाती?

यह कैसा विज्ञान लोकप्रियकरण है जहाँ बच्चों को लुभाने वाली हमारे समय की 'विज्ञान-लोक' और 'विज्ञान-जगत' जैसी एक भी पत्रिका समाज में कहीं भी उपलब्ध नहीं है। मैं समझता हूँ कि यह हमारा दुर्भाग्य है जो इस देश में उच्चतम पदों पर आसीन वैज्ञानिक सोच वाले तमाम विद्वानों की अगुआई के बावजूद किसी को भी इस तरह की पत्रिकाओं की अहमियत का कभी ख़याल ही नहीं आया वरना कौन नहीं जानता कि एक पत्रिका का जो प्रभाव होता, वह न जाने कितने समारोह, सभाओं, सम्मेलनों और सेमिनारों से ज्यादा प्रभावकारी सिद्ध हो सकता था। इस बात में कोई संशय नहीं कि नीति-निर्धारकों द्वारा की गयी इस अनदेखी के लिए भविष्य में कभी न कभी प्रश्न चिह्न अवश्य खड़ा होगा और तब इसका जवाब ढूँढ़े नहीं मिलेगा।

डॉ. विकास दवे : आपके विज्ञान लेखन की भविष्य योजना क्या है?

आईवर यूशिएल : क्या योजना बतायी जाए। जो बनाईं उनमें से एक भी कभी पूरी नहीं हुई।

ज्ञान-विज्ञान आधारित बाल-साहित्य छापने के लिए अपेक्षा के अनुरूप प्रकाशक मिलते नहीं। सरकार की योजनाओं में शामिल होने के लिये जो गुण चाहिये, वे शायद मेरे पास हैं ही नहीं। समाचारपत्रों में बच्चों के लिये जो स्थान निर्धारित हुआ करता था उसका रिवाज़ ही समाप्त हो गया है। आश्चर्य है कि इतने बड़े देश में आज एक भी बाल-विज्ञान पत्रिका नहीं है और कहानी-किस्सों की जो पत्रिकाएँ हैं, वे भी एक-एक कर बंद होती जा रही हैं। ऐसे में एक लेखक क्या योजना बना सकता है भला। हाँ, एक समय था तब पूरीतरह विज्ञान पर आधारित बच्चों के लिये उन्हीं के स्तर की एक पत्रिका निकालने की धुन थी पर इस दिशा में प्रयास के बावजूद न किसी सरकारी संस्था का सहयोग मिला, न ही सामाजिक संस्था का। ऐसे में 'एकला चलो रे' का मूल मंत्र लेकर जो कर सकता था, करता रहा और बिना योजना जो कर सकूँगा अंत तक करता रहूँगा।

साथ ही यह और बता दूँ कि समय-समय पर ऐसी योजनाएँ बनाने की लम्बी चली प्रक्रिया में जो समय लगा, वह यूँ ही व्यर्थ चला गया, इसका भी बेहद अफ़सोस है मुझे।

डॉ. विकास दवे : विज्ञान संचार और लोकप्रियकरण से जुड़े नीति-निर्माताओं और एजेन्सियों को आप क्या सुझाव देना चाहेंगे?

आईवर यूशिएल : लकीर के फ़कीर इन नीति-निर्माताओं और विज्ञान लोकप्रियकरण से जुड़ी एजेन्सियों के प्रति मैं बिलकुल आशावान नहीं हूँ। सिर्फ सम्बन्धों और सम्पर्कों के आधार पर चयन नीति अपनाने की जगह यदि ये पूरी तरह तन्मयता से कार्य करने वाले योग्य व कुशल व्यक्ति को निष्पक्षता के साथ उचित अवसर प्रदान करते तो स्थितियाँ वास्तव में बहुत बेहतर हो सकती थीं।

एक छोटा-सा उदाहरण यहाँ प्रासंगिक रहेगा। विज्ञान लोकप्रियकरण से जुड़े किसी सरकारी विभाग में एक प्रोजेक्ट के अनुबंधन के लिए होने वाली मीटिंग में मेरे किसी शुभचिंतक ने मेरा नाम जब दो-तीन बार बढ़ाया तो वहां उपस्थित मुख्य अधिकारी ने झुँझलाकर उन्हें ऐसा उत्तर दिया जो ध्यान देने योग्य है। 'अरे भाई, किसका नाम बढ़ा रहे हो? एक बार भी हमसे मिलने तो वो कभी आये नहीं।'

यहाँ इस अनुभव को उद्धृत करने का आशय सिर्फ़ इतना है कि मेल-मुलाकात के आधार पर कार्य बाँटने से कहीं बेहतर रहे यदि सम्बन्धित अधिकारी उम्मीदवार की योग्यता, अनुभव और उसकी कार्य कुशलता पर ध्यान दें और यदि ऐसा हुआ होता तो मेरे जैसे व्यक्ति ने चित्रों के माध्यम से न जाने कितनी रोचक व ज्ञानवर्धक पठन सामग्री अब तक अपने ज्ञान-पिपासु बाल-पाठकों तक पहुँचा दी होतीं।

कैसी विडंबना है कि एक तरफ देशभर में फैले लाखों बच्चे अपनी जिज्ञासा को शांत करने वाली चित्रों से युक्त पुस्तकों के लिये भूखों की तरह मुझसे अपनी माँग दर्शाते रहे और दूसरी ओर मैं इसके लिये उचित अवसरों के अभाव में अपने को कितना लाचार और बेबस महसूस करता रहा हूँ इसका अन्दाज़ा कौन लगा पायेगा भला और अब किसको ज़िम्मेदार मानकर कठघरे में खड़ा किया जाए, इस कृत्य के लिए?

डॉ. विकास दवे : आप बाल विज्ञान क्षेत्र में देश के एक ऐसे लेखक हैं जिसने न सिर्फ़ प्रतिष्ठित प्रकाशकों के सहयोग से अस्सी के लगभग पुस्तकें लिख कर बच्चों के बीच विज्ञान और गणित को खेल की तरह एक रोचक रूप में प्रस्तुत करने की न केवल शुरुआत की वरन् इस प्रयास में सफलता भी पायी

और इसीप्रकार समाचारपत्रों व बाल-पत्रिकाओं में शृंखलाबद्ध रूप में महीनों और कई जगह वर्षों तक लगातार जगहें बनाते हुए अपने सचित्र लेखों और चित्रित फ़ीचर्स के साथ चीनी चढ़ी दवाई की तरह इन रूखे-सूखे विषयों को मिठास के साथ परोसकर बच्चों के बीच विज्ञान लोकप्रियकरण के अपने उद्देश्य को बेहतरीन ढंग से पूरा किया। इतना सब होने के बावजूद आपकी झोली में आज तक कोई सम्मान या पुरस्कार क्यों नहीं आया?

आईवर यूशिएल : आप सम्मान और पुरस्कारों की बात कर रहे हैं, मैं तो कहूँगा की मुझे कार्य करने के लिए अच्छे अपेक्षित अवसर तक भी नहीं मिले जिनके माध्यम से बच्चों के बीच बहुत कुछ किया जा सकता था। मैं विगत चालीस वर्षों में जो कुछ कर पाया वह मेरी क्षमता के अनुपात में केवल दस प्रतिशत ही हो पाया, नब्बे प्रतिशत ऊर्जा बिलकुल व्यर्थ चली गई।

वैसे आपका जो सवाल है, यही कई बार मेरे बाल-पाठक मित्र और दूसरे प्रियजन भी पूछते हैं। पर ऐसे लोग यह सवाल कभी नहीं करते जो जानते हैं कि पुरस्कार और सम्मान मिलते नहीं हैं, लिये जाते हैं और इन दो बातों के अन्तर को आप अच्छी तरह समझ सकते हैं। वैसे भी जिस देश में पुरस्कार व सम्मान योग्यता और पात्रता के स्थान पर आवेदन, सिफ़ारिश व लौबिंग के ज़रिये मिलते हों, वहाँ मेरे जैसों का अनदेखा रह जाना कोई अस्वाभाविक नहीं है।

इसके अलावा जो लोग भाग्यवादी हैं उन्हें मैं यही कह देता हूँ कि सब भाग्य का खेल है। किस्मत में जो होता है वही मिलता है। हाँ, इतना ज़रूर है कि जिसे देश भर से पत्रों के रूप में हज़ारों-हज़ारों बाल-पाठकों का इतना प्यार मिला हो उसके लिये तो हर एक पत्र एक राष्ट्रीय स्तर के पुरस्कार से कम खुशी देता है क्या?

डॉ. विकास दवे : युवा विज्ञान लेखकों के नाम आपका कोई सन्देश ?

आईवर यूशिएल : मैं कार्य करके इसे उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करने का पक्षधर हूँ, महज संदेशों की भाषा में बात नहीं करता। वैसे भी जब तक सरकार और समाज की ओर से पहल न हो, युवा विज्ञान लेखकों को कोरे उपदेश व थोथे सन्देश देने का मैं कोई औचित्य ही नहीं समझता। अपने खर्चे से किताब छपा कर लेखक होने का दम्भ पाल लेने और फिर स्वयं ही एक आयोजन कर सुनियोजित तरीके से इसकी वाहवाही लूटने की प्रथा वाले इस दौर में प्रतिभाशाली युवा रचनाकारों को अगर संदेश दूँ भी तो क्या कि कपड़े उतारो और तुम भी इस हम्माम में घुस जाओ। तभी सफल समझे जाओगे और सम्मानों व पुरस्कारों को हथिया सकोगे। वैसे भी नई पीढ़ी स्वयं पूरी तरह सक्षम और समझदार है, परिस्थितियों के अनुसार देश की दशा और दिशा नियत कर लेगी। वैज्ञानिक उपलब्धियों के आधार पर पूरी दुनिया दिन पर दिन विकास की राह पर आगे बढ़ रही है और ऐसे में स्वाभाविक रूप से अपना देश भी आगे बढ़ेगा ही बढ़ेगा। हाँ, अपने देश में विकास की गति क्या रहेगी यह ज़रूर आज की नई पीढ़ी को तय करना होगा। जैसा नेतृत्व चुनेगी, जैसा निर्णय ये लेगी वैसा ही देश का भविष्य भी बनेगा।

सम्पर्क : Bareily
मो. 9456670808

डॉ. बिनय षडंगी राजाराम

सामाजिक समरसता और संत कवि महामति प्राणनाथ

वर्तमान गुजरात प्रांत के जामनगर के एक संभ्रांत ठाकुर परिवार में आज से लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व सन 1618 में जन्म ग्रहण करने वाले बालक को उसके पिता जामनगर के प्रधानमंत्री श्री केशव ठाकुर तथा माता धनबाई ने स्नेह से मेहराज नाम दिया था। बारह वर्ष की अल्पायु में ही बालक मेहराज ने गुरु श्री देवचन्द से 'तारतम्य' मंत्र की दीक्षा ली।

1646 ई. में अपने एक शिष्य के भाई का समाचार जानने के उद्देश्य से मेहराज को गुरु श्री देवचन्द ने 'बरारब' अर्थात् बेर्रे-अरब भेजा। 40 दिन की नाव-यात्रा के पश्चात् मेहराज अरब पहुँचे। जहाँ वे 4 वर्ष तक रहे।

1653 में गुरु देवचन्द्र के निधन के पश्चात् अपने पुत्र को गुरु-गद्दी सौंप कर स्वयं जामनगर का प्रधानमंत्री का दायित्व निर्वहन करते रहे। अपनी पत्नी राजबाई के साथ मिलकर धर्म-प्रचार का कार्य भी मेहराज निरंतर करते रहे।

एक मिथ्या प्रकरण में उन्हें जेल भी जाना पड़ा। कारावास के उस काल में ही मेहराज जी की दिव्य वाणी प्रस्फुटित हुई तब उन्होंने 'रास' ग्रंथ की रचना की। इस घटना के पश्चात् यद्यपि जामनगर के राजा ने क्षमा-याचना के साथ उन्हें कारावास से मुक्त कर दिया था, तब भी स्वयं मेहराज जी को राज-काज से विरक्ति हो गई तथा राज-काज त्याग कर वे पूरी तरह से धर्म-जागरण कार्य में लिप्त हो गए। मेहराज जी अनेक साधु-संतों से शास्त्रार्थ करते तथा अपने विचारों का लोहा मनवाते। उनके अनेक शिष्य बनते चले गए जिन्हें 'सुन्दर साथ' की संज्ञा दी गई थी। उनके इन्हीं सुन्दर-साथ-शिष्यों ने ही उन्हें 'प्राणनाथ' की उपाधि दी थी। अपने सुन्दर-साथ शिष्यों के संग उन्होंने मस्कट, अरब जैसी विदेश भूमि की यात्राओं के साथ-साथ भारत के अनेक महत्त्वपूर्ण नगरों की धर्म-यात्राएँ करते हुए अपने धर्म-विचारों का पर्याप्त प्रचार-प्रसार किया। 1964 ई. में प्राणनाथ जी ने मेड़ते में श्री लाभानन्द यति नामक एक ख्यातिलब्ध जैनाचार्य से शास्त्रार्थ कर उन्हें परास्त किया और अपने मत के प्रति आकृष्ट कर लिया। यहीं रहते हुए उनके मन में राज-काज को धर्म-परक बनाने की योजना के प्रति जागृति विकसित हुई। मारवाड़ के राजा जसवंत सिंह को अपने मत में दीक्षित करने के लिए प्राणनाथ जी ने शिष्य गोवर्धन को भेजा किन्तु इस कार्य में उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। राजा जसवंत सिंह 1658 में औरंगजेब से हार कर मृत्यु पर्यन्त औरंगजेब की सेवा में रहा। औरंगजेब के प्रभुत्व, क्रूरता और कट्टरता को हिन्दू-मुस्लिम एकता के मंत्र

से शमित करने के उद्देश्य से प्राणनाथ जी ने स्वयं उससे भेंट करने की योजना बनाई। मारवाड़ में रहते हुए एक दिन प्रात: कालीन नमाज के समय 'लाइलाहो इल्लिला.... मुहम्मदुर्ररसूल-इल्ला' कलमा को सुनकर प्राणनाथ जी को ऐसा अनुभव हुआ कि इस कलमा में और उनके 'तारतम्य' मंत्र में पर्याप्त समानता है। उन्होंने कलमा के शब्दों के अर्थ और तारतम्य मंत्र के अर्थ को समझाते हुए दोनों के मूलअर्थ की तात्विक एकता पर बल देते हुए हिन्दू-मुसलमान दोनों धर्मों में धार्मिक सामंजस्य के साथ-साथ सामाजिक समरसता के विकास की परिकल्पना की। इस कार्य को समुचित दिशा देने के लिए प्राणनाथ जी औरंगजेब से मिलने दिल्ली पहुँचे तथा उसे 'सत्यधर्म' का परिचय करवाने के उद्देश्य से उन्होंने शिष्य लालदास की सहायता से हिन्दवी भाषा में एक पत्र तैयार किया, बाद में उसे फारसी में भी अनुदित कर औरंगजेब के पास भिजवाया। यह घटना 1678 की है जब औरंगजेब एक क्रूर किन्तु समर्थ शासक के रूप में दिल्ली सल्तनत पर स्थापित हो चुका था। प्राणनाथ जी के धार्मिक सामंजस्य पूर्ण उपदेशों का उस पर रंच मात्र भी असर नहीं हुआ।

1678 ई. में ही हरिद्वार के कुंभ में प्राणनाथ जी ने अपने 'निजानंद' संप्रदाय की श्रेष्ठता को स्थापित करने के उद्देश्य से रामानुजाचार्य मध्वाचार्य, निंबार्क, विष्णुस्वामी आदि संप्रदाय के पंडितों से शास्त्रार्थ किया तथा पंडित समुदाय द्वारा 'निष्कलंक बुद्ध' की उपाधि अर्जित की।

इसी कालखंड में प्राणनाथ जी ने श्रीमद्भागवत के माध्यम से कुरान की एक नवीन व्याख्या हिन्दवी में तैयार की जिसे 'सनन्ध' नाम दिया। 'सनन्ध' अर्थात् 'रचनात्मक साक्ष्यों का समन्वय।' महामति प्राणनाथ ने कुरान के सत् धर्म और भारतीय स्थापित धर्म परंपराओं में समताओं को रेखांकित करते हुए दोनों धर्मों की तात्विक एकता पर बल दिया था। यह उस काल की सामाजिक-समरसता की चरम अभिव्यक्ति भी थी। 'सनंध' को कुरान का प्रामाणिक अभिलेख भी कहा जा सकता है। जिसमें प्राणनाथ जी ने कुरान की महत्ता को भारतीय दृष्टिकोण से देखते-परखते हुए भारतीय भूमि पर निवास करने वालों के अनुरूप स्पष्टीकरण प्रदान किया था। हिन्दू-मुस्लिम भाईचारे को प्राथमिकता देते हुए धर्म तथा उपासना के मूल निहितार्थ को समझाते हुए सामाजिक समरसता को साधने का जितना प्रबल प्रयास महामति प्राणनाथ ने किया था वह न केवल विरल है, अनूठा भी है-

'कहना सारा एक रस, हिन्दू-मुसलमान।
धोखा सबका भान के, कहूँगी सबका ज्ञान।।' - (सनंध, 3/3)

(महमति प्राणनाथ वाङ्मय विमर्श डॉ. रणजीत साहा, पृ. 192, यश पब्लिकेशन, संस्करण-2008 दिल्ली)

महामति प्राणनाथ लगभग पाँच वर्ष अरब देश में रहे थे अत: कुरान की आयतों का अर्थ भी बेहतर समझते थे। 'ला इलाह इल्लाह' के शाब्दिक अर्थ को समझ कर भारतीय धर्म को परंपराओं के अनुरूप उन्होंने इसकी सटीक व्याख्या प्रस्तुत की थी। 'ला' अर्थात् 'नहीं', 'इलाह' 'यानी' और 'इल्लाह' मतलब 'सर्वोपरिसत्ता', जिसका पैगाम लेकर आए थे मुहम्मद साहब। इस आयत को भारतीय विचारधारा से जोड़कर महामति ने 'क्षर, अक्षर, अक्षरातीत' सर्वोच्च सत्ता से इसका सामंजस्य स्थापित किया। उन्होंने कुरान की विभिन्न आयतों की भारतीय प्रचलित धर्म के अनुरूप व्याख्याएँ कीं और उनका प्रसार-प्ररन्तर

किया।

महामति प्राणनाथ ने यह भी कहा है कि उन्होंने कभी फारसी नहीं पढ़ी, तब भी वे व्यवहार ज्ञान से कुरान के अर्थ को भलीभाँति आत्मसात कर पाते थे-

'पढ़्या नहीं फारसी, न कछू हरक आरब।

सुन्या न कान कुरान को, और खोलत मायने सब।।' -खुलाआ, 15/5 (म.प्र....पृ.192)

इस्लामी तत्वों की व्याख्या करते हुए प्राणनाथ जी उनके मानवीय एवं आस्था मूलक पक्षों पर ही बल देते रहे। हिंदू एवं मुस्लिम धर्मों के विस्तृत-व्यापक ज्ञान को समान रूप से प्रचारित करना उनका प्रमुख उद्देश्य था-

'करना सारा एक रस, हिन्दू मुसलमान।

धोखा सबका मान के, कहूँगी सबका ज्ञान।। -सनंध, 3/3, (म.प्र.... पृ. 192)

अपने अनुयाइयों के अतिरिक्त विरोधियों के मध्य भी प्राणनाथ जी हिन्दू-मुस्लिम मतवादों के समान प्रवक्ता अवतारी पुरुष के रूप में लोकप्रिय थे। जैसे हरिद्वार में उन्हें 'विजयाभिनंद बुध' की उपाधि प्राप्त हुई थी वैसे ही आगे चलकर उन्हें 'खाविंद जमाने का' तथा 'इमाम मेहदी' जैसे खिताबों से भी नवाज़ा गया था।

महामति ने अपने ग्रंथ 'खुलासा' में खुलकर दोनों धर्मों की चर्चाएँ की हैं तथा हिन्दू धर्म की अच्छाइयों के साथ मुस्लिम धर्म के महत्त्व को भी समझाने के प्रयत्न किए-

'सबों दावा किया अरस का, हिन्दू या मुसलमान।

वेद कतेब दोऊ पढ़े, पढ़ी न का हू पहचान।।' - खुलासा 2/69 (म.प्र.... पृ.195)

प्राणनाथ जी के ये समस्त प्रयत्न कट्टरपंथी कठमुल्लाओं के साथ-साथ राजसत्ता में मदांध बादशाहों, सिपहसालारों को समुचित समझाइश देने के उद्देश्य से थे। औरंगजेब से उन्होंने सीधे संवाद करना चाहा, ताकि अम्नो-अमन का वातावरण कायम हो सके। औरंगजेब से कोई सुलह-समझौता नहीं हो पाया तो वे हिन्दू राजाओं की ओर मुखातिब हुए। इस प्रयत्न में बुंदेलखंड पन्ना के राजा छत्रसाल उनके परम भक्त बने और उन्हें अनेक सुविधाएँ-संपत्ति आदि प्रदान की।

राजा छत्रसाल पहले औरंगजेब के मुखापेक्षी थे किन्तु आगे चलकर शिवाजी से प्रेरणा लेते हुए तथा अपने गुरु प्राणनाथ जी के आशीर्वाद से उन्होंने अपनी स्वतंत्र और श्रेष्ठ राजसत्ता स्थापित की। कवि भूषण ने भी राष्ट्रहित में किए गए उनके प्रयासों की प्रशंसा करते हुए लिखा है- 'शिवा को सराहूँ या सराहूँ छत्रसाल को'

महामति प्राणनाथ एक ऐसे युग पुरुष थे, जिन्होंने अपने समय की नब्ज को पहचानते हुए किसी एक धर्म के स्थान पर 'विश्वधर्म' अर्थात् विश्व में व्याप्त सभी धर्मों की अच्छाइयों का समर्थन करते हुए सकारात्मक, सामंजस्य युक्त जीवन जीने की प्रेरणा दी। उन्होंने न केवल हिंदू-मुस्लिम धार्मिक एकतत्व की चर्चा की, अपितु ईसाई तथा यहूदी धर्मों के सकारात्मक पक्षों को भी सामने लाने के प्रयास किए। उनका प्रणामी धर्म जिसे वे 'निजानंद संप्रदाय' कहते थे वह 'मानव-धर्म' का पर्याय था। इस संप्रदाय को मानने वाले क्षर-अक्षर से परे परब्रह्म श्रीकृष्ण को अपना उपास्य मानते हैं। सूक्ष्म भक्ति भाव तथा कर्म को

प्रधानता देने वाले मूर्ति पूजा का समर्थन नहीं करते तथा उनकी प्रार्थना सभा में गीता के साथ-साथ कुरान का भी पाठ होता है। ईश्वर की प्राप्ति का साधन प्रेमलक्षणा भक्ति को मानते हैं तथा परमधाम ही उनकी परम लीला भूमि मानी जाती है।

महामति प्राणनाथ ने हिन्दू तथा इस्लाम की एकता को स्थापित करने के उद्देश्य से 'सनंध', 'खुलासा', 'खिलवत', 'कयामतनामा' आदि लगभग 14 ग्रंथों की रचना की है जिन्हें उनके प्रमुख शिष्य केशोदास ने 'कुलजम स्वरूप' के रूप में 1694 ई. में संपादित किया था। इस संकलन की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। सभी प्रणामी मंदिरों में इसी संकलन की हस्तलिखित प्रति की पूजा की जाती है।

प्राणनाथ जी की रचनाओं में प्रमुखतः हिन्दू, मुस्लिम एकता और करणीय-अकरणीय के तथ्य पद रूप में अभिव्यक्त हुए हैं। कई स्थानों पर प्रश्नोत्तरी शैली का सुन्दर प्रयोग भी हुआ है। कहीं-कहीं उच्च कवित्त-कल्पना के दर्शन भी होते हैं। विद्वानों उनके 'कीरंतन' ग्रंथ को साहित्य की दृष्टि से प्रभावशाली अभिव्यंजना तथा तीव्र भावाभिव्यक्तियों से सज्जित श्रेष्ठ कृति मानते हैं। लगभग साढ़े तीन सौ वर्षों पूर्व, भारत की धार्मिक-सांस्कृतिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों का आकलन करने के लिए प्राणनाथ जी की रचनाएँ एक उर्वरा पृष्ठभूमि प्रदान करती हैं।

भारतीय उपमहाद्वीप में धार्मिक तथा सामाजिक समरसता की आवश्यकता को महमति प्राणनाथ ने जिस गंभीरता से अनुभव किया था, उससे कहीं अधिक तीव्रता के साथ अपनी 'बानी' में उसको मुखर किया था। उनकी वाणी में समरसता का भाव मात्र श्रुति परंपरा तक सीमित नहीं था। उन्होंने 'हिंदवी' भाषा को अपनी लेखनी का आधार भी बनाया। उन्होंने बारंबार यह भी जताया कि यह-

'लागिल हिन्द मुस्लिम, अना कलिम हिन्द कलाम।
हिन्द कलाम जिद हवा ना, लागिल हिन्द मुस्लिम।।'

अर्थात्

खातर हिन्द के मुसलमानों के, मैं कहूँ हिन्द की बोली।
हिन्द की बोली ज्यादा प्यारी है मुझे खातर हिन्द के मुसलमानों के।।

यहाँ भी समन्वय-समरसत्ता का भाव कि हिन्दुस्थान में रहने वाले मुस्लिमों के खातिर यह हिन्दवी बोली बोलता हूँ।

खड़ी बोली के रूप में हिन्दी का वह प्रारंभिक स्वरूप उस युग की आवश्यकता थी। हिन्दुस्थान की सामान्य जनता न तो फारसी जानती थी, न ही संस्कृत या संस्कृत निष्ठ भाषा। ऐसी स्थिति में 'हिन्दवी' सबको प्रेमकर प्रतीत हुई। गुजराती परिवार में जन्म लेकर, अरब में कुछ वर्ष बिताकर संस्कृत के ग्रंथों का पठन-पाठन कर अपने विचारों को सामने लाने वाले बहुभाषी संत महामति प्राणनाथ का हिन्दी के प्रारंभिक स्वरूप को महत्त्व देना उनके समरस व्यक्तित्व की एक और अभिव्यक्ति है।

मन, वचन और कर्म से जिनका संपूर्ण जीवन सामाजिक समरसता को समर्पित रहा है, ऐसे महान संत महामति प्राणनाथ आज के वैमनस्यता से भरे समय में और अधिक प्रासंगिक लगते हैं।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*
मो. 9826215072

डॉ. भागीरथ कुमरावत

स्वामी विवेकानंद का सामाजिक सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय अवदान

संपूर्ण भारत में स्वामी विवेकानंद जी का 150वाँ जन्म वर्ष (सार्द्धशती समारोह) मनाया जा रहा है। स्वामी विवेकानंद जी की विश्व दृष्टि सभी धर्मों और धर्मावलम्बियों के लिए अवदान थी। भारतीय परिप्रेक्ष्य में उनका अवदान-साहित्यिक, सामाजिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में रहा है। इनमें से विशेषकर सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय प्रदेय (योगदान) सर्वाधिक रहे। स्वामी जी द्वारा सैकड़ों वर्ष पूर्व कही बातें आज भी प्रासंगिक हैं। स्वामी जी के समकालिक अनेक समाज सुधारक और धर्म प्रवक्ता हुए परंतु वे एक ऐसे युवा संन्यासी थे जिन्होंने लोगों के सामने न केवल कोरे भाषण दिए बल्कि उन्हें मानवतावादी बनने की प्रेरणा भी दी।

सामाजिक अवदान : 19वीं शताब्दी के अंत तक भारतीय समाज की स्थिति ऐसी हो गई थी कि स्वामी विवेकानंद के पदार्पण के पूर्व भारतवासी यह सोचने लगे थे कि एक-दो पीढ़ी के भीतर संपूर्ण हिंदुस्तान धर्मान्तरित होकर ईसाई संप्रदाय के अधीन हो जाएगा। इसलिए समकालीन आचार्यों में से केवल सर्वाधिक विवेकानंद जी ने ही भारतीय समाज को स्वाभिमान सिखाया। अपनी परंपराएँ, संस्कृति, सभ्यता, मूल्य अपने जीवन-दर्शन पर आस्था, श्रद्धा और विश्वास रखते हुए इन्हें ही अपनाने की प्रेरणा दी। उन्होंने यह भी कहा कि समाज के भीतर व्याप्त परंपराओं को वैसे का वैसा ही ग्रहण मत करो अपितु उन्हें काल और परिस्थितियों के अनुसार गढ़ लो, बदल लो, सूखे डण्ठलों को काटकर नई शाखाएँ उगा लो परंतु मूल वृक्ष जीवंत और समृद्ध बना रहे। आज भारतवर्ष स्वामी जी का ऋणी है क्योंकि स्वामी जी ने अपनी विरासत पर लज्जित होना त्यागकर गर्व करना सिखाया और भविष्य के लिए आशावादी होना सिखाया। स्वामी जी ने कहा कि मानव का मूलभूत धार्मिक कर्त्तव्य होता है-

-पिछड़ों को आगे बढ़ाना/निर्धनों व पीड़ितों की सेवा करना।/-निरक्षरों को साक्षर करना।/-कमजोर के प्रति स्नेहपूर्ण बल देना।/किसी को उसके धर्म से अलग न करना।

स्वामी जी मानवतावादी थे। उनके अनुसार-

मानवता ही ईश्वर है।/मानव सेवा ही ईश्वर सेवा है।

36 करोड़ देवताओं को भूलकर भारतमाता की सेवा करो।

हमारा देश ही हमारा जाग्रत देवता है, यह मानो।

स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि हमें एक ऐसे धर्म की आवश्यकता है-

जिसमें मनुष्य बनाने की क्षमता हो।/जिसमें मनुष्यता लाने की क्षमता हो।

जो शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक दृष्टि से सबल बनाए।/जो जीवन में सत्य, न्यायप्रिय, मन की पवित्रता लाने की क्षमता पैदा करें। /जो मन की कमजोरी त्यागकर वीर्यवान बनने की ओर अग्रसर करें।

स्वामी जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन जिन कामों के लिए दिया वे काम हैं-

मानव जाति के पुनर्जागरण के लिए।/निर्धनों के उत्थान के लिए।

मानवीय दुर्दशा को दूर करने के लिए।/समाज में भेदभाव समाप्त करने के लिए।

प्रत्येक गाँव में एक कुआँ, एक मंदिर और एक शमशान हो।/शिक्षा के प्रसार के लिए।

चिकित्सा सेवाओं को विस्तार देने के लिए।

ये कार्य आज भी भारत के लिए प्रासंगिक बने हुए हैं। इन्हें और तेज गति से करने की आवश्यकता है।

स्वामी जी ने समाज को अपने अंतिम संदेश में कहा कि-

एक दूसरे की सहायता करो।/आपस में लड़ो मत।

एक-दूसरे का विनाश मत करो।/समन्वय और शांति से रहो।

मतभेद और कलह भूल जाओ।

सांस्कृतिक और राष्ट्रीय अवदान : भारत का सांस्कृतिक और राष्ट्रीय जागरण सदैव धर्म के पुनरुद्धार से संबंधित रहा है। जब-जब भारत में राष्ट्रीय चेतना का अभाव दिखा तब-तब किसी-न-किसी महापुरुष ने यहाँ अवतरित होकर धर्म का पुनरुद्धार किया, समाज में सांस्कृतिक और राष्ट्रीय भाव जागरण की तीव्रता को बढ़ाया। यही कार्य 19वीं शताब्दी के अंत में स्वामी विवेकानंद ने किया था, क्योंकि भारत के जीवन पर, संस्कृति, तीज-त्यौहारों, परंपराओं, सभ्यता, सामाजिक प्रथाओं, साहित्य और ललित कलाओं पर धर्म की अमिट छाप रही है। इसलिए विशेषकर भारत में सांस्कृतिक और राष्ट्रीय भाव जागरण के लिए धर्म का पुनरुद्धार आवश्यक कहाँ। भारत का यह सौभाग्य रहा है कि जब-जब उस पर विपत्तियाँ आईं, अधर्म और अनाचार बढ़ा, तब-तब यहाँ महापुरुषों का आविर्भाव हुआ और उन्होंने अपने चरित्र के बल पर इन काले बादलों को हटाया है। 19वीं शताब्दी का काल भारत के लिए बड़ा विकट था, जिस विज्ञान ने अपनी युक्तियों और उपलब्धियों द्वारा पश्चिम के देशों को अभिभूत कर वहाँ की धार्मिक मान्यताओं की जड़ों को हिला कर रख दिया था, उस विज्ञान का यह क्रांतिकारी प्रकाश भारत में भी आया था। उस समय की प्राचीन नगरी कलकत्ता पाश्चात्य शिक्षा का केन्द्र बनी और भारतीय संस्कृति का तिरस्कार होने लगा। यह वही समय था जब भारत में एक नई समस्या ने जन्म लिया। दो विचारधाराओं- पाश्चात्य भौतिकवादी संस्कृति और भारत की प्राचीन सनातनी संरक्षणशील संस्कृति के बीच मुठभेड़ होने लगी।

ईसाई मिशनरी ने भारत आकर इतना वीभत्स चित्र खींचा, इंग्लैण्ड और अमेरिका को लेख लिखे थे ताकि वे भारतवासियों पर अपनी करुणा और दयालुता की वर्षा कर सकें। इसकी जानकारी हमें

Swami Vivekanand in America-New Discoveries नामक ग्रंथ को पढ़ने से मिल सकती है। इस ग्रंथ में 4 चित्र छपे हैं-इन चित्रों को छापने का तात्पर्य यह था कि अमेरिकन बच्चा अपनी पढ़ाई की शुरुआत इन चित्रों को देखकर और इसके नीचे लिखी कविता की पंक्तियों को पढ़कर करता था। पहला चित्र था- हिंदू माता अपने बच्चों को गोद में लेकर समुद्र किनारे फेंकने के लिए खड़ी है।

शेष तीन चित्रों में भी भारत की बुरी तरह से निंदा की गई है। यह था विवेकानंद के युग का अमेरिका। ऐसे समय में भारत को एक ऐसे महापुरुष की आवश्यकता थी जो जनमानस को समझे और विखण्डित हिंदू धर्म की नौका को डूबने से बचा ले। गीता में कहा गया है-

'यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।'

भगवान अपनी इस प्रतिज्ञा का निर्वाह करते हुए 'रामकृष्ण परमहंस' के रूप में भारत भूमि पर आए जो साक्षात् वेद स्वरूप थे और विवेकानंद आए वेद की टीका बनकर।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के नवस्फुरण में विवेकानंद का बहुत बड़ा योगदान रहा है। उन्होंने ये कार्य प्राथमिकता से किए-

भारतवासियों में आत्मविश्वास जगाया।/अंग्रेजों का मुँह जोहते मत रहो।

विदेशियों से केवल लेने की ही मत सोचो, उन्हें भी कुछ देने की सोचो।

स्वामी जी ने चेतावनी देते हुए कहा कि तुम्हारा सबसे बड़ा धन धर्म (आध्यात्मिकता) है। इसी में तुम्हारा कल्याण है।

यदि इसे त्यागकर पश्चिम की जड़तापूर्ण सभ्यता के पीछे दौड़ोगे तो तुम केवल तीन पीढ़ियों में ही समाप्त हो जाओगे।

और संसार में मृत जातियों का सर्वांगीण विनाश ही होता है।

इस प्रकार स्वामी जी ने भारतवासियों की सुसुप्त राष्ट्रीय चेतना में नव-जागरण के बीज बो दिए, क्योंकि स्वामीजी यह अच्छी तरह जानते थे कि भारतवासी इतने परमुखापेक्षी हो गए हैं कि यूरोपियन जब तक किसी बात की प्रशंसा नहीं कर देते तब तक हम उदासीन बैठे रहते हैं।

यही कारण है कि वे भारतवासियों की यह परमुखापेक्षिता को हटाने के लिए सन 1893 में शिकागो विश्व धर्म सम्मेलन में भाग लेने पहुँचे थे। उन्होंने वहाँ अमेरिकावासियों को ललकारा था, कि अंग्रेजो तुम लोगों ने भारतवासियों पर बहुत अत्याचार किया है। सारे हिंद महासागर की कीचड़ निकालकर तुम्हारे मुँह पर फेंक दिया जाए तो भी कम है। यह कहकर दूसरे ही क्षण जब वे कहते हैं अमेरिकावासी मेरे भाइयों एवं बहनों तो तालियों की गड़गड़ाहट गूँज उठी।

15 अगस्त 1886 ई. को श्रीरामकृष्ण ने जगदम्बा को अपना महान् शिष्य सौंपकर समाधि ले ली। इसके बाद नरेन्द्रनाथ गैरिक वस्त्र पहनकर भारत भ्रमण पर निकल पड़े। लगातार 6-7 वर्ष घूमते रहे और 1893 ई. को अमेरिका रवाना हो गए। पाश्चात्य जगत के लिए स्वामी जी का उपदेश था-

कट्टरता, सांप्रदायिकता और धार्मिक विद्वेष ने इस धरती को जकड़ रखा है।

इन शक्तियों ने धरती पर उत्पात मचाकर मारकाट कर रखी है।

अब इन शक्तियों की आयु समाप्ति पर है।

इन शक्तियों की मृत्यु की घोषणा कर दें और ऐलान कर दें कि, कलम और तलवार से दूसरे के पंथ, धर्म पर आघात नहीं करेंगी। स्वामी जी ने एक और भाषण में कहा कि-

हम अन्य धर्मों को बर्दाश्त करें यह ठीक नहीं परंतु अन्य सभी धर्मों को अपना धर्म ही समझें। अमेरिकी जनता को भारत के विषय में नई दृष्टि देते हुए वे बोले-

भारतवर्ष को धर्म की आवश्यकता नहीं, रोटी की है।

धन की नहीं, कल-कारखानों की है।

भूखों के आगे धर्म नहीं, रोटी परोसो, यही न्याय है।

इस प्रकार स्वामी जी यूरोप और अमेरिका में 4 वर्ष घूमते रहे और दिन-रात धर्म चर्चा में लगे रहते थे। उनका विश्व प्रेम का प्रभाव इतना गहरा पड़ा कि अनेक लोग भक्त हो गए और यह भाव जाग्रत हो गया कि मानवता के लिए अगला संदेश भारत से ही आनेवाला है। अंत में अपनी विशाल कीर्ति पीछे छोड़कर स्वामी जी 30 दिसम्बर 1896 ई. को यूरोप से भारत लौट आए। भारत से वे भिक्षु के रूप में विदेश गए थे परंतु विदेश से वे सम्राट के समान वापस आए। सर्वत्र जनता ने उनका देवता के समान सत्कार किया। धर्मदूत बनकर गए और क्रांतिदूत बनकर भारत लौटे। कोलम्बो से चेन्नई तक अपने भाषण में बस एक ही बात कही वह यह थी-

आगामी 50 वर्षों तक तुम्हें केवल जननी जन्मभूमि की ही आराधना करनी है। इस समय तुम्हारा एक मात्र देवता, तुम्हारा राष्ट्र है। मैं भारत की दुरावस्था को बदल देने को बैचेन हूँ। नारायण के समीप पहुँचने का मार्ग दरिद्र नारायण की सेवा का मार्ग है। जनता-जनार्दन की निष्काम सेवा को ही ईश्वर की सच्ची पूजा बताते हुए स्वामी जी ने कहा था-

सारी उपासना का सार है, पवित्र होना और दूसरों की भलाई करना।

स्वामी जी ने कहा था कि नारी जाति का अनादर भी देश के पतन का कारण है, इसलिए नारी का सम्मान करना सीखो-

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रिया।।'

मारग्रेट एलिजाबेथ नोबुल को अपनी शिष्या बनाकर भगिनी निवेदिता के रूप में सदैव के लिए भारत ले आए।

सम्पर्क : *खरगौन (म.प्र.)*
मो. 9111010383

भारत यायावर

वसंत पंचमी का भी गणित होता है?

निराला ने धर्मवीर भारती को समझाया था।

एक बार वसंत पंचमी पर निराला जी को जन्मदिन की बधाई देने धर्मवीर भारती महादेवी वर्मा के सहयोगी गंगाप्रसाद पाण्डेय को साथ लेकर उनके पास पहुँचे। निराला जी गंगा तट के किनारे एक पीपल के पेड़ के चबूतरे पर बैठे हुए थे। पाण्डेय जी ने भारती का परिचय दिया : भारती हैं, आपसे कई बार मिल चुके हैं। कवि हैं। परिमल में हैं।

यह प्रसंग सन् पचास के आसपास का है। भारती उस समय के सबसे ऊर्जावान उभरते हुए साहित्यकार थे। साहित्य को मतवाद के झाड़-झंखाड़ से बाहर निकाल कर परिमल नामक एक साहित्यिक संस्था का गठन किया था। उनका निराला के प्रति सम्मान और समर्पण का ही परिणाम था कि निराला के प्रथम कविता-संग्रह 'परिमल' के नाम पर ही संस्था का नाम रखा था।

धर्मवीर भारती निराला से अनेक बार मिल चुके थे, लेकिन निराला उन्हें नहीं पहचानते थे। जब पाण्डेय जी ने उनका कवि के रूप में परिचय दिया तो निराला ने तुरंत पूछा 'कविता करते हो? क्यों? कुछ और क्यों नहीं करते?'

पाण्डेय जी ने बताया कि विश्वविद्यालय में पढ़ाना शुरू किया है। तब निराला ने पूछा कि क्या पढ़ाते हो? भारती जी ने जवाब दिया कि हिन्दी!

निराला ने कहा, 'हिन्दी पढ़ाते हो! अच्छा, गणित जानते हो?'

भारती ने सकुचाते हुए कहा, 'जी, ज्यादा तो नहीं, थोड़ा बहुत।'

तब निराला ने एक अद्‌भुत बात कही, जो धर्मवीर भारती के लिए अविस्मरणीय थी। निराला ने कहा कि जब तुम गणित नहीं जानते तो हिन्दी कैसे पढ़ाओगे!

धर्मवीर भारती को कुछ समझ नहीं आ रहा था। वे हतप्रभ थे। निराला ने फिर स्नेहमयी वाणी में कहा, 'अच्छा, कोई बात नहीं है। मुझसे गंडा बँधवा लेना। मैं तुम्हें गणित पढ़ाऊँगा। ऊँची गणित, क्या कहते हैं उसे हायर मैथेमेटिक्स, उसी में कविता होती है। समझे!'

'जी!' भारती ने सहमति में सिर हिलाया।

'जी क्या? परीक्षा दो! ... आज तुम क्यों आए हो? मेरा जन्मदिन है न? वसंत पंचमी है न? अच्छा बताओ कि वसंत पंचमी का गणित क्या है?'

धर्मवीर भारती ने सोचकर उत्तर दिया, 'वसंत पंचमी का गणित?यानी पाँचवाँ दिन, माघ की शुक्ल पंचमी!'

निराला ने फटकारते हुए कहा, 'बस! यूनिवर्सिटी में पंचांग पढ़ाते हो? यह वसंत पंचमी का गणित है? तुम परीक्षा में फ़ेल। अच्छा पाण्डेय तुम बताओ!'

गंगाप्रसाद पाण्डेय निराला के मुँहलग्गू थे। थोड़ी कड़कदार आवाज़ में कहा, 'अब निराला जी, आपका प्रश्न आप ही समझें! मेरे तो प्रश्न ही समझ में नहीं आया। उत्तर क्या दूँगा।'

निराला जी ने जोर से कड़क कर कहा, 'पाण्डेय, तुम डबल फ़ेल!'

दोनों को फ़ेल कर निराला ने एक मील गंगा तट के किनारे रेत पर दौड़ने की सजा दी। फिर कहा कि अब तुम दोनों मेरी क्लास में भर्ती हो गए। अब बताता हूँ पंचमी का गणित!... देखो, पहले तत्त्व लो, फिर उसमें गुण जोड़ दो। हो गया ...अब ॠषियों को बुलाकर स्थापित कर दो। फिर उसमें से सूर्यकांत त्रिपाठी को घटा दो। बस हो गई पंचमी। समझे या नहीं समझे।'

भारती जी तो चुपचाप थे लेकिन पाण्डेय जी ने निराला जी को सुरती फाँक कर कहा, 'देखिए निराला जी, आपने एक तो दौड़ा दिया, ऊपर से उलटबाँसी में बात कर रहे हैं। यह तो सरासर आपका अन्याय है!'

तब निराला जी ने वसंत पंचमी का गणित खोलकर समझाया। वे बोले, 'देखो, तत्त्व होते हैं पाँच, तुलसी बाबा कह गए हैं न पंच तत्त्व यह अधम सरीरा! अब इसमें गुण जोड़ लो। गुण तीन होते हैं-- सत, रज और तम। तो पाँच और तीन हुए आठ। ऋषि बुलाए तो सप्त ऋषि आ गए। यानी सात और आठ हो गए पन्द्रह। अब इस पन्द्रह में एक सूर्यकांत त्रिपाठी को घटा दो। बच गए चौदह। चौदह बनता है एक और चार से। दोनों को जोड़ दो। हुआ पाँच यानी वसंत पंचमी। तो यह है पंचमी का गणित!'

इतना कहकर निराला जी गंगा नदी को देखने लगे। फिर बोले, 'पंचमी में श्रेष्ठ वसंत पंचमी। मैया सरस्वती ठहरी उनकी अधिष्ठात्री। तभी निराला पैदा हुए। समझे, कापी में नोट कर लेना।'

निराला से बहस-मुबाहिसे में कौन पड़ता? लेकिन भारती जी ने हिम्मत कर पूछ ही लिया, 'पर आपने तो इस गणित में सूर्यकान्त त्रिपाठी को निकाल बाहर कर दिया तो फिर जन्मदिन कैसा?'

तब निराला ने बताया, 'तो मैंने कब कहा कि यह सूर्यकान्त त्रिपाठी का जन्मदिन है। यह तो निराला का जन्मदिन है। सूर्यकान्त त्रिपाठी तो एक व्यक्ति है, जिसमें राग है, द्वेष है, अहंकार है, लोभ है, मोह है, काम है, क्रोध है। यह सब उसका व्यक्तिगत है। सरस्वती आई तो उन्होंने उसका ममत्व छुटाकर उसे सबका बना दिया। तब कवि पैदा हुआ। तब निराला पैदा हुआ।'

फिर गंगाप्रसाद पाण्डेय से उन्होंने पूछा कि तुम तो सरस्वती का अर्थ भी नहीं समझते होगे? और उन्होंने अपनी 'देवी सरस्वती' शीर्षक कविता सुनाई, तथा उस कविता की व्याख्या की।

वसंत पंचमी का वह अविस्मरणीय दिन! दिव्य गंगा का कल-कल निनाद! गंगा तट पर निराला की वाणी में 'देवी सरस्वती' कविता को सुनने का सुख धर्मवीर भारती कभी भूल नहीं पाए।

रामविलास शर्मा ने निराला की जीवनी में लिखा है कि मैट्रिक की परीक्षा में वे गणित में फ़ेल हो गए थे। लेकिन कविता के गणित को उनके जैसा जानने वाला साहित्य साधक होना मुश्किल है।

सम्पर्क : *हजारीबाग (झारखंड)*

मो. 6207264847

यशवंत चौहान

रामचरित मानस : लोकोक्तियों एवं काव्यसूक्तियों के संदर्भ में

गोस्वामी तुलसीदास जी कृत रामचरितमानस का न केवल भारतीय जनमानस में अपितु सम्पूर्ण विश्व में गहरा एवं व्यापक प्रभाव है। रामचरित मानस जैसा सरल, सरस, जन-जन में प्रिय एवं समस्त दृष्टिकोण से समन्वयवादी ग्रंथ साहित्य जगत में अन्यत्र दुर्लभ है। रामचरितमानस मानस का हर वर्ण एवं शब्द न केवल मानवों को एक व्यापक द्रष्टिकोण देता है अपितु इस देश की जीवन पद्धति व सामाजिक सरोकारों का अनुपम दस्तावेज है। रामचरित मानस की मीमांसा होती रही है और युगों-युगों तक होती रहेगी। किसी एक लेख में रामचरित मानस का सांगोपांग विश्लेषण असंभव सा ही है। हिन्दी साहित्य एवं जन-जन की भाषा में मानस की लोकोक्तियों, काव्यसूक्तियों एवं मुहावरों का अत्यधिक महत्व है। लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रयोग से न केवल सरसता और स्वाभाविकता का बोध होता है साथ ही भाव का पूर्ण स्पष्टीकरण भी होता है। लोकोक्तियों के प्रयोग से सृजन प्रभावयुक्त बनता है अत: साहित्य में इसका प्रभाव अपेक्षित भी होता है। रामचरितमानस मानस में यह भी संभव है कि भारतीय जनमानस में प्रचलित लोकोक्तियों को तुलसीदास जी ने समुचित स्थान दिया और यह भी संभव है कि मानस के छन्दों में से अनेक लोकोक्तियों का प्रादुर्भाव हो। मुहावरे जहाँ वाक्य को विशिष्टता प्रदान करते हैं वहीं लोकोक्तियाँ स्वयं में पूर्ण भावार्थ का प्राकट्य करती हैं। काव्यसूक्तियों का आम बोलचाल की भाषा में प्रयोग एक अलग ही अनुभूति करवाता है। रामचरितमानस मानस में इनका अद्भुत संगम है। छंद विधान में वर्णित रामकथा ने न जाने कितने ही रूपों में साहित्य को समृद्ध किया है। अनेक दोहे और चौपाइयाँ विविध रूपों में हमारे मानस पटल पर इस प्रकार से अंकित हो गयी हैं कि वे किसी छंद का अपूर्ण भाग होकर भी पूर्णता का बोध करवाती है। इस लेख का उद्देश्य उसी की मीमांसा करना है।

बालकांड से हम यह साहित्य यात्रा प्रारंभ करते हैं। बालकांड में लोकोक्तियों का व्यापक प्रभाव है। एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है 'राम करे सो होय'। यह बालकांड की एक चौपाई का ही अंश है -

होइहि सोइ जो राम रचि राखा।
को करि तर्क बढ़ावै साखा।। (1/52/7)

इसी प्रकार समर्थ व्यक्तियों के अवगुणों को छोड़ देने के लिए भी 'समरथ को नहीं दोष गुसाईं निम्न चौपाई' का ही अंश है -

समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं।
रवि पावक सुरसरि की नाईं।। (1/69/8)

इसी प्रकार 'पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं' का प्रयोग निम्न चौपाई में बड़े सुंदर रूप में हुआ है –

कत बिधि सृजी नारि जग माहीं।
पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं।। (1/102/5)

इसी प्रकार 'हरि अनंत हरि कथा अनंता' भी निम्न चौपाई का एक अंश है –

हरि अनंत हरि कथा अनंता।
कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता।। (1/140/5)

एक और प्रसिद्ध लोकोक्ति है – 'घट-घट में राम है' अथवा 'प्रभु व्यापत सर्वत्र समाना' जो निम्न चौपाई का अंश है –

हरि ब्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।। (1/185/5)

इसी प्रकार कार्य हो जाने के बाद पश्चाताप के भाव के लिए कहा जाता है – 'का बरखा जब कृषि सुखाने' निम्न चौपाई का अंश है –

का बरषा सब कृषि सुखानें।
समय चुकें पुनि का पछितानें।। (1/261/3)

अयोध्या कांड में भी इसके अनेक उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं।

जनमानस में अत्यधिक प्रचलित उक्ति है – 'कोउ नृप होउ हमहिं का हानी'। जो निम्न चौपाई का अंश है –

कोउ नृप होउ हमहिं का हानी।
चेरी छाड़ि अब होब कि रानी।। (2/16/5)

एक प्रचलित काव्य सूक्ति 'हानि लाभ जीवन मरण यश-अपयश विधि हाथ' निम्न दोहे का अंश है –

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु विधि हाथ।। (2/171)

वैसे तो श्रीमद्भागवत गीता कर्म का सार तत्व है किन्तु कर्म की श्रेष्ठता का सुंदर उदाहरण मानस की इस चौपाई का अंश है –

करम प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा।। (2/218/4)

इसी प्रकार अत्यधिक प्रचलित लोकोक्ति 'मुखिया मुख सो चाहिए' निम्न दोहे का अंश है-

मुखिआ मुखु सो चाहिए खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अंग तुलसी सहित विवेक।। (2/315)

अरण्यकांड में भी इसकी दु:ख और संत्रास के समय ही रिश्तों की असली परीक्षा के लिए लिखा

है –

धीरज धर्म मित्र अरु नारी।

आपद काल परिखि अहिं चारी।। (3/5/7)

किष्किन्धा कांड में भी इसका प्रयोग हुआ है। एक चौपाई का एक चरण 'छिति जल पावक गगन समीरा' जनमानस में अत्यधिक प्रचलित है–

छिति जल पावक गगन समीरा।

पंच रचित अति अधम सरीरा।। (4/11/4)

रामचरित मानस के सबसे अधिक प्रचलित सुंदरकांड में भी इसके दिव्य दर्शन हैं। 'जहाँ सुमति तंह संपति नाना' निम्न चौपाई का अंश है।

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।

जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना।। (5/40/6)

एक अन्य लोकोक्ति 'भय बिन होई न प्रीत' निम्न दोहे से है –

बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बिति।

बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति।। (5/57)

लंकाकाण्ड में –

'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' निम्न चौपाई का एक चरण है–

पर उपदेश कुसल बहुतेरे।

जे आचरहिं ते नर न घनेरे।। (6/78/2)

इसी प्रकार उत्तरकाण्ड में भी इसके दर्शन हैं। परोपकार की भावना के लिए सदैव ही कहा जाता है– 'परहित सरिस धर्म नहीं भाई'। इसका पूर्ण रूप यह है –

परहित सरिस धर्म नहिं भाई।

पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।। (7/41/1)

संतों के कोमल हृदय के लिए एक लोकोक्ति 'संत रधय नवनीत समाना' निम्न चौपाई का एक चरण है–

संत रधय नवनीत समाना।

कहा कबिन्ह परि कहै न जाना।। (7/125/7)

वास्तव में रामचरितमानस के छंदों में सम्पूर्ण जीवन दर्शन व्याप्त है। मानस के दोहों एवं चौपाइयों में लोकोक्तियों एवं काव्यसूक्तियों के प्रयोग ने इसे न केवल भारतीय साहित्य का अपितु विश्व साहित्य का अमर ग्रंथ बना दिया है।

सम्पर्क : *राजगढ़, जिला–धार (म.प्र.)*
मो. 9752659556

डॉ. शोभा जैन

समकालीनता के साहित्यिक संदर्भ : पुनरावलोकन

'मैं अपने समय को साधता हूँ, मैं नयन में, सूर्य की आलोक आभा आँजता हूँ।
ब्याल जैसे काल को मैं, चेतना से नाथता हूँ। काल की मउहर बजाते, लोक-लय में, नाचता हूँ,
द्वंद में, निर्द्वंद में, मैं निरंतर जागता हूँ।'

केदारनाथ अग्रवाल- कवि चेतन सृष्टि का कर्ता है, रचनाकार अपने समय को साधते हुए अपनी रचना में मानवीय चेतना की लड़ाई ही तो लड़ता है। हम जिस समय में हैं साहित्यिक संदर्भ में वह शताब्दी का युवा वर्ष है। जो नई-नई अवधारणाओं का समय है। गत दो सौ वर्षों में हमारे परिवेश और चिन्तन में बड़े बदलाव आये हैं। यह प्रयोगशीलता निरंतर रहने वाली है। इसमें सबसे बड़ा बदलाव यह कि साहित्य की चिंताएँ आज कवियों लेखकों आलोचकों तक सीमित रह गईं हैं। एक बड़ा पाठक वर्ग इस बदलाव से अनभिज्ञ है। जिसके चलते आधुनिकता की आहटों के साथ उत्तर आधुनिकता से जुड़े विमर्श की यात्रा में बार-बार यह प्रश्न उठता रहा है कि साहित्य में किया क्या जा रहा है जो परिवर्तित भी है? नि:संदेह साहित्य जड़ की तरह स्थिर रह भी नहीं रह सकता क्योंकि उसका सीधा सम्बन्ध मनुष्य से है और मनुष्य की परिस्थितियाँ परिवेश, विचार, भाव स्थिति अनुरूप बदलते रहते हैं। साहित्य में यही परिवर्तनशील उपस्थिति लेखक के माध्यम से दर्ज होती है।

जीवन-जगत के परिवर्तनों के साथ-साथ बदलते जाते हैं मानवीय रिश्ते और उसी के समानांतर साहित्य-सृजन में भी परिवर्तन आता जाता है। साहित्य की सृजनात्मक विधाएँ अपनी रचना वस्तु व प्रेरणा के लिए समकालीन जीवन के विविध परिदृश्यों से जुड़ती हैं। इस संदर्भ में साहित्य की तीन महत्त्वपूर्ण अवधारणाएँ- 'समकालीनता' 'समसामयिकता' और 'आधुनिकता' सदैव बहुचर्चित रहीं। काल दर्शन की दृष्टि से 'समकालीनता' शब्द विचारणीय है। यह एक ऐसी जटिल गुत्थी है कि समय के सत्ता प्रवाह में किस खण्ड को काटकर समकालीनता के दायरे में निबद्ध किया जाये और किस खण्ड का परिहार किया जाये इस संबंध में एक मत नहीं। साहित्य के इतिहास में समकालीनता एक मूल्यवाचक अवधारणा है लेकिन मूलत: है यह मूल्यबोधक ही। भविष्यदृष्टि और जीवन-संदर्भ के परिवर्तित रूप, ये दो इसके प्रमुख आयाम हैं अज्ञेय ने अपने एक भाषण में कहा था- 'एक वृक्ष जड़ से भी अपना भोजन ग्रहण करता है और वायु से भी, धूप से और जो बाहर है उससे भी।' कहने का अर्थ अगर कोई संस्कृति बाहर से ग्रहण

कर पोषित हो रही है तो यह उसकी ग्रहणशीलता, जीवन्तता का प्रमाण है। विषय और भाषा कभी भी ठहर नहीं सकते जिस प्रकार समय के साथ किसी वृक्ष की जड़ों का विस्तार तो होता ही है नई कोपलें भी पल्लवित होती हैं जो उसी वृक्ष का हिस्सा है। फलों के पकने पर जो नवीन बीज बिखरते हैं जिनसे न केवल नया वृक्ष बनता है अपितु एक पूरा अरण्य का निर्माण होता है। वह भी उसी पुरातन वृक्ष का ही हिस्सा है।

समकालीनता साहित्य के मूल्यांकन की कसौटी मानी गई है, जिसका सीधा सम्बन्ध उसकी काल चेतना से है। इसके संदर्भ में जब भी साहित्य को परखा जाता है तो प्राय: हिंदी के चार कवियों के नाम उल्लेखनीय हो जाते हैं, कबीर, निराला, अज्ञेय और मुक्तिबोध। रैदास, सरहपा, नानक आदि की रचनाएँ भी समकालीनता के केंद्र में आज भी हैं। शायद ही आज ऐसा कोई साहित्यिक मंच हो जो इनके उल्लेख के बिना पूरा हुआ हो। उन्होंने उस व्यवस्था की निंदा की जिसमें जीवन दूभर था। तुलसीदास ने अपनी रचना में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के लोकमंगल रूप के दर्शन कराकर एक स्वस्थ समाज की कल्पना की तो सूरदास ने कृष्ण भक्ति से उदास मानव के हृदय में आस्था और प्रेम पल्लवित किया। क्या समकालीन संदर्भों में उनकी आवश्यकता नहीं? ये साहित्यकार जीवन की पाठशाला से निकले ऐसे स्नातक है जो साहित्य के विश्वविद्यालय में आज भी प्रासंगिक हैं और यही अपेक्षा समकालीन साहित्यकारों से भी है।

एक अध्ययन के अनुसार अगर हम विश्व स्तर पर समकालीनता की बात करें तो यूरोप में 'समकालीन' शब्द का इतिहास में अधिक प्रयोग हुआ। सम्भवत: द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति से इन देशों में रह रहे लोगों ने प्रत्येक विकास को देखा है। महत्त्वपूर्ण मानवीय प्रगतियाँ होती रही हैं। वर्तमान युग ने भी महत्त्वपूर्ण राजनीतिक प्रगति की। यह प्रगति पैदा नहीं की गई वरन् उनका विकास हुआ। कहने का अर्थ -समकालीनता कोई रॉकेट साइंस नहीं है। ये एतिहासिक घटनाओं का हिस्सा है जो आज के लिए एकदम प्रासंगिक है। अज्ञेय ने अपने एक साक्षात्कार में स्पष्ट किया है- एक लेखक जो उसका आज का युग या समाज है और पूरे अतीत तक जितनी भी ऐतिहासिक या प्रागैतिहासिक स्मृतियाँ हैं वे सब उसके 'समकालीन' का हिस्सा बन जाती हैं। जब भी कोई लेखक अपने कालबोध के साथ लिखता है तो उसमें उसके अनुभव की स्मृतियाँ होती हैं जिसमें उसका केवल अतीत और समाज ही नहीं पूरी की पूरी संस्कृति और जाति का अनुभव उसके लेखन में दिखाई पड़ता है। जिसे हम समकालीन कहते हैं। इसमें उसके विषय और भाषा का नया स्वरूप भी मुखरित होता है। भाषा और अर्थ का ये प्रवाह बहती नदी की भाँति अनेक घाटों तालों से गुजरते हुए अपने भीतर अनेक स्वाद को समेटे अपनी निरन्तरता में सर्जनोन्मुखी उर्मियों को रचता है। इस प्रकार समकालीनता का अर्थ एक समय में लिख रहे लेखकों भर से नहीं बल्कि अपने समय, काल की प्रमुख प्रवृत्तियों और यथार्थ को दर्ज करने के उपक्रम में देखा जाना चाहिए। केवल शब्दकोशीय अर्थ लेकर हम साहित्य की समकालीनता को समझने में चूक कर सकते हैं। सृजनात्मक धरातल के नित नवीन ऊर्जा-संचरण में पुराने को ख़ारिज नहीं किया जा सकता। एक बुजुर्ग की स्मृतियों में जो अनुभव होते हैं उनमें अतीत और वर्तमान दोनों समाहित होता है। कहने का अर्थ व्यक्ति का विकास हवा में नहीं हो सकता हमारे वर्तमान का उन्मेष अतीत के मस्तिष्क पर होता है।

साहित्य की प्रत्येक कृति में समकालीनता की धड़कनें सुनाई देती हैं। उस समकालीनता में उसके अतीत की पृष्ठभूमि को हम मिटा नहीं सकते। कोई भी कृतिकार इससे कटकर साहित्य सृजन नहीं कर

सकता। जीवन और साहित्य के रेशे-रेशे में चिर पुराण और नवीन दोनों का सामंजस्य अपनी परम्पराओं के रूप में निहित होता है। परम्परा अपने आपको नित-नये में तब्दील करती है। यही उसकी जीवन्तता का प्रमाण है, अन्यथा वो जड़ बन जाएगी। समकालीनता का अर्थ भौतिक रूप से घटित हो रहा, मात्र उतना नहीं बल्कि जो क्षतिग्रस्त है, उसकी पुनर्रचना की सृजनशील चेष्टाएँ और जीवन को समुन्नत, सुंदर, मनोहारी बनाने की कल्पना भी उस समकालीनता का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। साहित्य में समकालीनता, शाश्वता में भी अनुवर्तित हो सकती है, बशर्ते कि उसकी प्रभाव-अवधि चिरकालिक बनी रहे, क्योंकि प्रत्येक काल का साहित्य तदर्थ जीवन, काल, प्रवृतियों और समसामयिक गतिविधियों का सजीव चित्रांकन करता है। साथ ही समसामाजिक जीवन को विशिष्टतापूर्वक प्रतिबिंबित करता है इसीलिए साहित्य चिरनवीन भी है और चिरपुरातन भी है। पुराणों में पर्यावरणीय दृष्टिकोण से गंगा नदी की होने वाली अधोगति की चर्चा बड़ा ही महत्त्वपूर्ण और विचारणीय है। गंगा नदी की अवनति की जिन चार अवस्थाओं का वर्णन मिलता है क्या वे अवस्थाएँ आज मौजूद नहीं हैं?

साहित्य में समकालीनता और शाश्वतता हृदय के दो भाग जैसे हैं जो समानुगामी भी है। उदाहरण-स्वरूप हमारे संपूर्ण वैदिक साहित्य हमारे सामने हैं, जिनमें पूर्णरूपेण 'रामायण' और 'महाभारत' की शाश्वतता विद्यमान है। रामायण राम की और महाभारत कृष्ण की समकालीनता से अभिप्रेत हैं, जिन्हें कालजयेता प्राप्त है। इन दोनों आदि साहित्य में उत्प्रेरक-तत्व और जागरण-शक्ति अक्षुण्ण है। आज भी इसकी प्रासंगिकता जीवंत है। महाभारत तो कलयुगी मंच पर चलचित्र जैसा ही प्रतीत होता है। उसकी एक-एक घटना, परिघटना और दृश्य-वृत्तियाँ आज की जैसी दिखती हैं। एक उच्च कोटि के रचनाकार के लिए युगबोध का जितना महत्व है उतना ही पुरातन का भी। साहित्य का अगर कार्पोरेटीकरण न हो और उसे किसी कालखंड, तिथि, वर्ष की संज्ञा के दायरे से बाहर लाकर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मिले और सौन्दर्य और प्रेम जो साहित्य की बुनियाद हैं अगर इसकी पूर्ति हो सके तो समकालीन साहित्य के अध्ययन में असुविधा नहीं होगी।

आज का साहित्य, खासकर आधुनिक साहित्य भी समकालीन हो सकता है, किंतु उसमें शाश्वतता का गुण अनुपस्थित पाया जाता है, इसलिए कि यह साहित्य मौलिक और यथार्थ न होकर आयातित सामग्रियों पर आधारित हुआ करता है। सत्य और यथार्थ से दूर बिंबों, शब्दों के आडंबरों से युक्त रचनाएँ और कृतियाँ आज की सदी में मानव-समुदाय को आह्लादित, आनंदित और रसमय नहीं कर पा रही हैं। वे हमारी स्मृति-संपदा की निधि कभी नहीं हो सकतीं। ज्ञानोन्मेषक और सूचनात्मक सामग्री भले ही पाठक समुदाय के मन को स्वीकार करे पर वह उनके हृदय का स्पर्श कर उनकी भावनाओं का कभी उन्नयन नहीं कर सकेगी'(डॉ. मेहता नागेन्द्र सिंह द्वारा हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के हरिद्वार अधिवेशन में पठित आलेख) दरअसल छायावाद, प्रगतिवाद नई कविता, अकविता, जनवादी लेखन ये सारे विभाजन सतही ही हैं अगर यह पाठकों में स्थान नहीं बना पाते पाठकों को नामकरण की फ्रेम से भटकाया नहीं जा सकता। अगर साहित्य अनुभूति सम्पन्न है, उसकी समकालीनता में वर्तमान बोध के साथ अतीत और भविष्य का विवेकसम्मत बोध होता है तो वह युग संदर्भों में प्रासंगिक होता है और इसी के साथ उसके आधुनिक जीवन मूल्य जुड़ते चले जाते हैं।

हिंदी की यह समस्या कहा जाये या दुर्भाग्य कि वाम पक्ष के अतिशय आग्रह से साहित्यिक कृतियों और पत्रिकाओं को अपने समय का घोषणा-पत्र बनाने पर जोर दिया जा रहा है। नि:संदेह इन दिनों चिन्तन के क्षेत्र में नया कम है, कुछ विधाएँ संघर्ष कर रही हैं। कुछ में नई बैचेनी हैं किंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिए की किसी भी युग का साहित्य सम्पूर्ण नहीं रहा। वर्तमान में ऐसे विषय भी मौजूद हैं जो पूर्व के साहित्य में सतही रूप में मौजूद थे, विशेषकर दलित विमर्श, नारी विमर्श, समान संहिता विमर्श, हिंदुत्व विमर्श, किन्तु ये विषय भी अब साहित्य के केंद्र में हैं। पत्रिकाओं में इसे प्रमुखता से स्थान दिया जा रहा है।

बहरहाल साहित्यिक संदर्भ में समकालीनता की अवधारणा में यह पहचानना चाहिए कि इससे पूरे समाज को क्या मिल रहा है। मार्क्सवादी आलोचकीय गुणा-भाग करने वाले इस प्रश्न का उत्तर अवश्य खोजें कि परिवर्तनकारी जीवन-संदर्भों के लिए प्रयत्नशील समकालीन रचनात्मकता से अधिक किस दौर में और अधिक रुझान देखा गया, क्या इसका कोई इतिहास उपलब्ध है? भारतीय हिंदी साहित्य पर समकालीनता का इतना आग्रह क्यों? जबकि होना यह चाहिए कि हम काल के किसी बिंदु पर न तो एकाकी हों, न काल की किसी ईकाई में बँधे हों। समकालीनता मानवीय चेतना के विकास में जो भी पाती है वही परम्परा के रूप में हमारे सामने होता है। समग्रत: साहित्य का वर्तमान उज्ज्वल है और यह अपने सामाजिक सरोकारों का निर्वहन संजीदा तरीकों से कर रहा है। यह साहित्य जगत की समकालीनता के लिए शुभ संकेत हैं।

सम्पर्क : इंदौर (म.प्र.)
मो. 9424509155

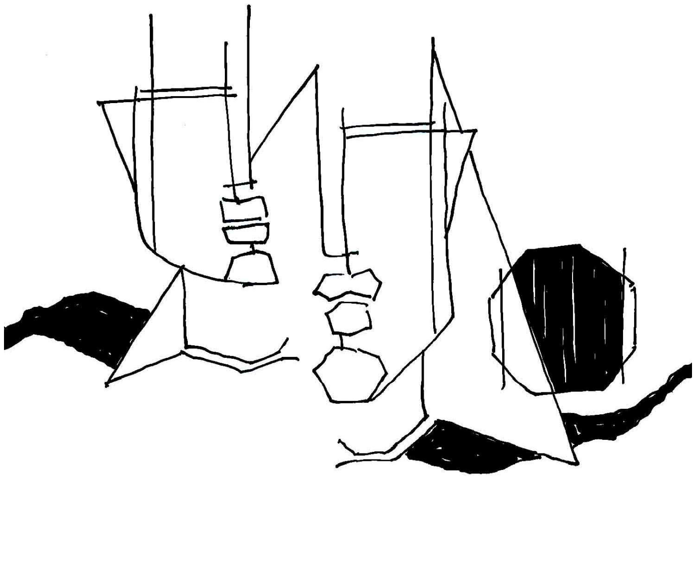

डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा

युग-द्रष्टा और स्त्रष्टा दिनकर : कविता और जीवन में सामरस्य की साधना

मरण-कोट पर चढ़ जीवन की ध्वजा उड़ाकर
मैं मृत्युंजय कवि प्रकाश की जय का गान करूँगा।

आधुनिक हिन्दी कविता धारा के मृत्युंजयी कवि रामधारी सिंह दिनकर (1908-1974) की ये पंक्तियाँ उनकी जीवन-दृष्टि और काव्य-दृष्टि का स्पष्ट साक्ष्य देती हैं। दिनकर ने मानव जीवन और उसकी उदात्तता के प्रति प्रतिबद्ध रचनाकार के रूप में अपनी खास पहचान बनायी है। वे शुद्ध कविता पर अपनी सजग दृष्टि से विचार करते हैं, किन्तु वे कभी अपने युग-जीवन से विमुख न हो सके। उनका कथन भी है, ''कविता व्यक्ति द्वारा सम्पादित सामाजिक कार्य है और शुद्ध कविता समाज के लिए ही लिखी जाती है।'' (संचयिता, पृ. 11) ऐसा नहीं है कि दिनकर ने कला में सोद्देश्यता के प्रश्न पर निगाहें नहीं रखी हैं। वरन् वे तो सोद्देश्य कला के खिलाफ दिए जाने वाले सारे तर्कों से निरंतर जूझते रहे। इसके बावजूद उन्हें लगता है कि ''कवि भी सामाजिक जीव है और निरुद्देश्य उसकी जीभ नहीं खुलनी चाहिए। सौंदर्य-सृजन की कला में असफल हो जाने पर कवि को पश्चात्ताप होना स्वाभाविक है, किन्तु चमत्कारपूर्ण सौंदर्य के स्त्रष्टा को इस सूचना से सिर नीचा करने का कोई कारण नहीं दिखता कि अमुक समालोचक ने उसकी कृति में सोद्देश्यता का दोष निकला है।'' (दिनकर संकलित निबंध, पृ. 27) दिनकर की स्पष्ट मान्यता है कि कला के उद्देश्य और राजनीति के उद्देश्य को जोड़ना ठीक नहीं है। उन्होंने अपने निबन्ध 'साहित्य और राजनीति' में क्रांति और साहित्य की भूमिका पर लिखा भी है, ''क्रान्ति जनसमूह को जगाकर उसे नई साँस, नई संस्कृति और तरंगित होने वाले जीवन की ओर प्रेरित करती है। जीवन का आदेश है कि साहित्य नए इतिहास के निर्माण में योग दें। यह काम केवल कला को पूजने वाले साहित्य से नहीं हो सकता।'' स्वयं दिनकर ने अपने इस कथन को चरितार्थ किया। उनकी कविताओं में नए इतिहास के निर्माण के अनेक सूत्र सहज ही उपलब्ध हैं। 'प्रणति' (परिवर्तित नाम 'शहीदस्तवन') की पंक्तियाँ देखिए, जहाँ दिनकर ने इतिहास गढ़ने वाले वीरों को नमन किया है। यहाँ इतिहास की सीमाओं को चिह्नित करने में भी कवि पीछे नहीं है:

जला अस्थियाँ बारी-बारी
छिटकायी जिनने चिनगारी,
जो चढ़ गये पुण्य वेदी पर लिये बिना गरदन का मोल।
कलम, आज उनकी जय बोल।

इस नए इतिहास की रचना में दिनकर ने भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के आख्यान-सूत्रों में निहित प्रतीकों अनेकानेक को न सिर्फ खोजा है, वरन् उन्हें युगानुकूल अर्थविस्तार और प्रासंगिकता भी दी है। प्रलयंकारी ताण्डव की नई भूमिका देखिए, जहाँ वे राष्ट्र-समाज के दर्द को मिटा देना चाहते हैं -

नाचो हे नाचो, नटवर!
चंद्रचूड़! त्रिनयन! गंगाधर! आदि-प्रलय! अवढर! शंकर!
प्रभु! तव पावन नील गगन-तल,/विछलित अमित निरीह-निबल-दल,
मिटे राष्ट्र, उजड़े दरिद्र-जन,/आह! सभ्यता आज कर रही
असहायों का शोणित शोषण।
पूछो, साक्ष्य भरेंगे निश्चय, नभ के ग्रह-नक्षत्र-निकर!
नाचो हे नाचो नटवर! (ताण्डव, रेणुका, 1933)

जाहिर है दिनकर युगीन काव्यधारा के स्वर में स्वर मिलाने वाले एक कवि भर नहीं हैं, वरन् वे उसके सजग द्रष्टा और हस्तक्षेपकर्ता भी हैं। उनकी सर्जना और विचारणा में अद्भुत सामंजस्य दिखाई देता है, जो आकस्मिक या बाह्यारोपित नहीं है। इसी दृष्टि से आज दिनकर साहित्य के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता प्रतीत होती है, अन्यथा उन्हें हिन्दी आलोचना में अपेक्षित महत्त्व नहीं मिला है। वस्तुत: उनकी रचना और विचारणा दोनों में हर युग, हर काल के लिए सार्थक सन्देश छुपे हैं। जब बात 'शक्ति या सौन्दर्य' के विकल्प की आती है, तो दिनकर हमारे दौर के लिए भी प्रासंगिक संकेत दे जाते हैं। खासतौर पर मानवता विरोधी घृणा, आतंक और हिंसा के मुकाबले के लिए दिनकर का यह स्वर अधिक काम्य हो गया है -

तुम रजनी के चाँद बनोगे?/या दिन के मार्तण्ड प्रखर?
एक बात है मुझे पूछनी,/फूल बनोगे या पत्थर?
सिर्फ ताल, सुर, लय से आता/जीवन नहीं तराने में/निरा साँस का खेल कहो
यदि आग नहीं है गाने में।
(शक्ति या सौन्दर्य, धूप-छाँह से)

दिनकर सही अर्थों में महाकवियों की परम्परा के रचनाकार हैं, जिनके लिए काव्य और अहं के बीच द्वन्द्व के लिए कोई जगह नहीं हैं। उन्होंने लिखा भी है, ''कविता में एक स्थिति वह भी आती है जब कवि को अपने अहं का लोप करना पड़ता है अथवा समाधि की स्थिति में देर तक टिके रहने से कवि के अहं का आप से आप लोप हो जाता है। तब तो भूमि रिक्त रह जाती है, वहाँ कहीं से स्रस्त होकर कविता खुद-ब-खुद उतर आती है।'' कवि दिनकर ने इसी समाधि-भूमि पर टिके रहकर सृजन किया, किंतु उनकी यह भूमि जीवन और समाज से परे किसी वानप्रस्थी की भूमि नहीं थी। वे तो तमाम विसंगतियों

और विद्रूपताओं से घिरे युग परिवेश में संघर्ष करते हुए इस भूमि पर पहुँचे थे। जाहिर है दिनकर का आत्म संघर्ष अन्य कवियों की तुलना में कहीं अधिक नुकीला और धारदार था। भारत के अतीत का गुणगान करने वाला कवि जब यह कहने को बाध्य होता है तो उसके निहितार्थ समझे जाने चाहिए -

धन पिशाच की विजय धर्म की पावन ज्योति अदृश्य हुई,
दौड़ो बोधिसत्व! भारत में मानवता अस्पृश्य हुई। (बोधिसत्व)

दिनकर का कविमन अपने माध्यम में विलय होने के साथ ही अत्याचार और अन्याय से ग्रस्त समाज के साथ गहरा तादात्म्य लिए हुए था। वे मानते थे कि वास्तविकता के संघर्ष से असंतोष की जो चिनगारी उड़ती है, वही मेरा स्वप्न है। युगों के दर्पण में कविता-कामिनी का अपार्थिक रूप देखकर शून्य से पंख खोलकर उड़ने की इच्छा जरूर हुई; परन्तु इसे देश की अपमानित मिट्टी का प्रभाव कहिए या मेरा अपना भाग्य-दोष कि कल्पना के नन्दन-कानन में भी मिट्टी की गंध मेरा पीछा नहीं छोड़ सकी।'' (कला में सोद्देश्यता का प्रश्न) जाहिर है कवि दिनकर मानवता की राह में अड़े हुए पहाड़ों को कैसे स्वीकार कर सकते थे? वे सभी के लिए मुक्त प्रकाश, मुक्त समीर, मुक्त गगन की कामना करते हैं, जिसकी जरूरत दिनोंदिन बढ़ती जा रही है।

है सबको अधिकार मृत्तिका/पोषक-रस पीने का,
विविध अभावों से अशंक हो/कर जग में जीने को।...
जब तक मनुज-मनुज का यह/सुख-भाग नहीं सम होगा,
शमित न होगा कोलाहल/संघर्ष नहीं कम होगा। (कुरुक्षेत्र)

दिनकर के काव्य में सामाजिक चिंताओं की विविधायामी अभिव्यक्ति हुई है, जो आकस्मिक नहीं है। आम आदमी की पीड़ा और सामाजिक विषमता को लेकर उन्होंने गहरा असंतोष अपनी कविताओं में दर्ज किया है। स्वातंत्र्य-पूर्व भारत की पीड़ा रही हो अथवा आजाद भारत के राजनैतिक-सामाजिक जीवन में व्यापती विसंगतियाँ- दिनकर ने सब को अपने दृष्टिपथ में रखा था। वे तटस्थ रहने वाले रचनाकार नहीं हैं और न ही एकांगी दृष्टि से युग-जीवन को देखने वाले कलाकार। वस्तुत: साहित्य की आयुष्मानता को लेकर उनका यह आदर्श स्वयं उन्हीं के रचनाकर्म में भी प्रतिफलित हुआ है, ''कवि-कल्पना और सामाजिक जीवन के बीच सामंजस्य स्थापित किए बिना साहित्य आयुष्मान नहीं हो सकता। छोटी-छोटी, क्षणिक और हल्की भावनाओं का गीत-प्रणयन भी अपनी जगह मूल्य रखता है, किन्तु कलाकारों में श्रेष्ठ तो वही गिना जाएगा, जो जीवन के किसी महान् प्रश्न पर महान् रूप से कला का रंग छिड़क सके।...

सच्ची कला में सुन्दरता नीति-प्रचार का शिकार नहीं होती, उद्देश्य के सामने माथा नहीं टेकती। ऊँची कविता का अगर रूप सुन्दर होता है तो उसकी आत्मा तथा उसके अन्तर्गत भाव भी पुण्य को प्रेरित करने वाले तथा मंगलकारी होते हैं।'' दिनकर ने कलम और तलवार के अंतर को अपने ढंग से पाट दिया था। वे दोनों के महत्त्व और महिमा को गाते हैं, वहीं दोनों की परस्पर पूरक भूमिका को भी चिह्नित करते हैं। वस्तुत: इन दोनों के रिश्ते को अपने जीवन और कृतित्त्व में सहेजने के कारण ही दिनकर की रचनाएँ आयुष्मान सिद्ध हुईं।

कलम देश की बड़ी शक्ति है भाव जगाने वाली,/दिल ही नहीं दिमागों में भी आग लगाने वाली।

पैदा करती कलम विचारों के जलते अंगारे,/और प्रज्ज्वलित प्राण देश क्या कभी मरेगा मारे?...

जहाँ लोग पालते लहू में हालाहल की धार/क्या चिन्ता यदि वहाँ हाथ में हुई नहीं तलवार? (कलम और तलवार)

दिनकर ने कलम और तलवार ही नहीं और भी अनेक द्वन्द्वों के बीच समन्वय की राह दिखाई है। उनके समूचे रचनाकर्म पर विचार करें तो कबीर और तुलसी दोनों समन्वित होते हुए दिखाई देते हैं। इन दोनों की क्रमश: क्रांतिभावना और समन्वयशीलता, गहरा आक्रोश और अटूट आस्था दिनकर के यहाँ हमजोली बनकर आते हैं। क्या करुणा, क्या शौर्य; क्या हिंसा, क्या अहिंसा, क्या भोग, क्या त्याग, क्या हृदय, क्या बुद्धि, क्या राष्ट्रप्रेम, क्या अखंड मानवता, क्या राष्ट्रीयता, क्या अन्तरराष्ट्रीयता-इन सभी का संग-साथ दिनकर के काव्य को विलक्षण बनाता है।

दिनकर ने काव्य को हवाई बनाने से सदैव परहेज किया। उन्हें जब ओज की जरूरत थी, उन्होंने अंगार के गीत रचे और जब माधुर्य और अध्यात्म की जरूरत थी तो उन्हें भी गीतों में उतारा। दिनकर के बारे में ठीक ही कहा जाता है कि हृदय कुंज में बाज और कोयल दोनों ही क्रीड़ाएँ जारी रहती थीं। कवि जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' उनसे कहा भी करते थे, "दिनकर सावधान रहना! तुम्हारा बाज कहीं तुम्हारी कोयल को न खा जाए।" यह ठीक है कि आज दिनकर की राष्ट्र चेतना और आह्वानधर्मी कविताएँ अधिक चर्चा में रहती हैं, किन्तु उनकी शृंगार और अध्यात्मपरक काव्य का भरा-पूरा संसार भी अपनी ओर आकर्षित करता है। पहले जागृति का स्वर देखिए, जहाँ शृंगार गैर जरूरी नज़र आता है -

'प्यारे स्वदेश के हित अंगार माँगता हूँ।/चढ़ती जवानियों का शृंगार माँगता हूँ।

(सामधेनी, आग की भीख, पृ. 56)

इसी तरह कवि को हिमालय से जागने की अपेक्षा है, तपश्चर्या की नहीं -

तू मौन-त्याग कर सिंहनाद/रे तपी! आज तक का न काल।

नव-युग-शंखध्वनि जगा रही।/तू जाग, जाग मेरे विशाल। (रेणुका, पृ. 8)

दूसरी ओर कवि दिनकर 'उर्वशी' के लिए पुरूरवा के कथन में प्रणय-सौंदर्य के अनुपम चित्र उकेरते हैं -

जब से तुम आयीं, पृथ्वी कुछ अधिक मुदित लगती है;/शैल समझते हैं, उनके प्राणों में जो धारा है...

सब हैं सुखी, एक नक्षत्रों को ऐसा लगता है/जैसे कोई वस्तु हाथ से उनके निकल गयी हो। (उर्वशी)

दिनकर काव्य-कर्म की शक्ति के साथ-साथ उसकी चुनौतियों से भी अनजान नहीं हैं। वे इसे ईश्वर का वरदान मानते हैं वहीं अनेक वरदानों से वंचित होने का कारण भी। 'नेमत' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ मात्रा सुख-सुविधा के लिए उत्कंठित सर्जकों के नए दौर के बीच आज अधिक प्रासंगिक हो गई है-

"कविता सब से बड़ा तो नहीं,/फिर भी इच्छा वरदान है। मगर मालिक की अजब शान है।

जिसे भी यह वरदान मिलता है,/उसे जीवनभर पहाड़ ढोना पड़ता है।

एक नेमत के बदले।/अनेक नेमतों से हाथ धोना पड़ता है।'' (हारे को हरिनाम)

दिनकर ने युद्धों के कोलाहली दौर में इस प्रश्न को भी उठाया कि क्या हिंसा महज हिंसा के लिए है अथवा उसकी सार्थकता अहिंसा, मानव मूल्य और न्याय की प्रतिष्ठा के लिए है? गाँधी का मत था कि हिंसा से मिली विजय-पराजय के समतुल्य होती है। इस प्रेरणा-सूत्र की आवृत्ति दिनकर काव्य में कई बार हुई है। युद्ध की विभीषिका की ओर कवि ध्यान खींचता है -

''युद्ध का परिणाम?/युद्ध का परिणाम ह्रास, त्रास!

युद्ध का परिणाम सत्यानाश!

रुण्ड-मुण्ड-लुंठन, निहिंसन, मीच!/युद्ध का परिणाम लोहित कीच!'' (कलिंग-विजय)

वस्तुतः युद्ध और आतंकवाद से लेकर घनघोर व्यक्तिवाद तक और बाजारवाद से लेकर सर्वग्रासी सत्तातंत्र के समकालीन दौर में दिनकर-काव्य नए प्रश्न खड़े करता है। स्वराज से सुराज तक की तलाश तो आज भी जारी है -

'अटका कहाँ स्वराज? बोल दिल्ली! तू क्या कहती है?

तू रानी बन गयी, वेदना जनता क्यों सहती है?...

कह दो उनसे, झुके अगर तो जग में यह पायेंगे

अड़े रहे तो ऐरावत पत्तों से बह जाएँगे। (समर शेष है)

दिनकर ने कविता और जीवन दोनों में शिव और सुंदर के सामरस्य की साधना की थी। वे मानते हैं, ''सत्य, शिव और सुंदर का समन्वय केवल कलम या कूची से नहीं किया जा सकता। इस समन्वय की साधना आचरणों से की जाती है। पाप खूबसूरत होने पर भी पाप है चाहे वह जीवन में हो या काव्य में। इसी तरह, जो सुंदर नहीं है वह सत्य हो या शिव, हम उसे कला की कृति नहीं कह सकते चाहे वह धर्म का ही आख्यान क्यों न हो।'' (सत्यं, शिवं, सुन्दरम्) आचरण के जरिये भी कलम की साधना को चरितार्थ करने वाले दिनकर कभी तटस्थ नहीं रहे। वे तटस्थ रह भी कैसे सकते थे? यहाँ तक कि वाणी और चिंतन के साथ कर्म की दूरी के पाट देने के लिए तो वे उत्कंठित थे ही कर्मक्षेत्र में सिर्फ कर्म ही प्रधानता के पक्षधर थे। उन्होंने लिखा है, ''जब तक कर्म की घड़ी नहीं आती, वाणी और चिन्तन अपना काम कर सकते हैं, किन्तु कर्म का यह अखाड़ा खुलते ही कर्म ही हमारा प्रधान कर्तव्य हो जाता है। क्योंकि कर्म के अखाड़े में चिंतन की तलवार का भरोसा करने वाला मनुष्य मारता नहीं, खुद मारा जाता है।''क्रिया को छोड़ चिंतन में फँसेगा, उलटकर काल तुझको ही ग्रसेगा।'' जाहिर है अपनी वाणी, चिंतन और कर्म से कभी तटस्थ न रहने वाले दिनकर का यह स्वर आज भी सुना जाना चाहिए।

समर शेष है, नहीं पाप का भागी केवल व्याध,

जो तटस्थ हैं, समय लिखेगा उनका भी अपराध।

सम्पर्क : *उज्जैन (म.प्र.)*

मो. 09826047765

डॉ. प्रभा पन्त

अखण्ड ज्योति में प्रतिबिम्बित मानवीय मूल्य

मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी भी सामाजिक प्राणी हैं। उनका अपना-अपना एक विशिष्ट समाज और जीवनयापन-शैली होती है। प्रत्येक प्राणी में कुछ गुण प्रकृति प्रदत्त हैं तथा कुछ परिस्थिति-जन्य; जिनका वे युगों से पालन करते चले आ रहे हैं और वह गुण विशेष ही उनकी पहचान हैं। मानव सभ्यता एवं उसके सांस्कृतिक विकास की कहानी इनसे कुछ भिन्न है। मानव ने विवेकशीलता के कारण अपने जीवन को अर्थवत्ता प्रदान करने के लिए तथा स्वयं को सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाने के लिए, अपने वैयक्तिक विकास तथा सामाजिक विकास के उद्देश्य से कुछ ऐसे नियम निर्धारित किए जो उसे अन्य प्राणियों से भिन्नता एवं श्रेष्ठता प्रदान करते हैं। यद्यपि देश-काल तथा परिस्थितियों के अनुसार मानव निर्मित मूल्य परिवर्तित एवं परिवर्धित होते रहते हैं, किन्तु अधिकांश मानवीय मूल्य ऐसे हैं जिनका पालन वह युगों से करता चला आ रहा है और वे स्थायी विश्वास अथवा मानव मूल्य जाने-अनजाने उसके व्यवहार में स्पष्टत: दिखाई देते हैं।

सत्य, अहिंसा, करुणा, दया, प्रेम, परोपकार, सदाचार, सहयोग, क्षमा, विनम्रता, जन्मभूमि के प्रति प्रेमभाव, देशप्रेम, विश्वबन्धुत्व आदि मानव समाज द्वारा निर्धारित, समाज को संचालित करने वाले तथा जीवन को सहज बनाने वाले, वह मानवीय लक्ष्य अथवा आदर्श मनोभाव हैं, जिन्हें मानव मूल्य कहा जाता है। इनके विकास में घर-परिवार, समाज एवं संगति से प्राप्त संस्कारों का विशेष योगदान रहता है। 'जीवन की आन्तरिक एवं बाह्य आवश्यकताओं के आधार पर कुछ निश्चित जीवनदशाओं को मानदण्डों या कसौटियों को हम मानव मूल्य की संज्ञा देते हैं। मूल्यों की सृष्टि मात्र व्यक्ति से सम्बन्धित न होकर पूरे समाज से होती है अर्थात् मूल्य की रचना व्यक्ति द्वारा न होकर, समाज विशेष में होती है और इन्हीं से समाज का व्यवस्थापन एवं नियमन होता है।'

'अखण्ड ज्योति' विगत लगभग चौरासी-पचासी वर्षों से प्रकाशित होने वाली ऐसी पत्रिका है, जिसमें समाज का सर्वांगीण विकास करने की अद्भुत क्षमता है। इसमें प्रकाशित होने वाली सामग्री पाठक को मानवीय-मूल्यों का ज्ञान देकर, व्यक्ति का स्वयं से परिचय कराती है और उसे मानवीय लक्ष्य प्राप्ति का मार्ग दिखाती है। बालक की प्रथम पाठशाला परिवार होता है; अत: उसमें मानवीय मूल्यों का बीजारोपण सर्वप्रथम माँ तथा परिवारजनों द्वारा ही किया जाता हैं। संस्कारों के विकास में माता-पिता, परिवार एवं विद्यालय की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। सत्य, अहिंसा, प्रेम, परोपकार जैसे सुसंस्कार जहाँ

बच्चों में मानवीय-मूल्यों को विकसित करने में सहायक होते हैं; वहीं क्रोध, अहंकार, असत्य, जैसे कुसंस्कार छल-कपट, चोरी, हिंसा, स्वार्थपरता तथा अवसरवादिता जैसे नकारात्मक भावों को जन्म देते हैं। 'मानव मस्तिष्क नकारात्मक व सकारात्मक दोनों भावों से युक्त होता है। नकारात्मक भावों से जहाँ विनाशकारी गतिविधियाँ संचालित होती है, सकारात्मक भावों से नवनिर्माण की सुखद रचनाएँ प्रस्फुटित होती हैं।' इसलिए आवश्यक है कि सुसंस्कृत समाज की संरचना के लिए, व्यक्ति को बाल्यकाल से ही सकारात्मक परिवेश प्रदान किया जाए।

व्यक्ति के जीवन को सहज बनाने में मानवीय मूल्यों का महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि व्यक्ति का बाल्यकाल मूल्ययुक्त परिवेश में व्यतीत होता है तो उसके हृदय में करुणा, दया, प्रेम, परोपकार, एवं सदाचार जैसे सकारात्मक मनोभावों का अंकुरण स्वतः प्रारम्भ हो जाता है। परिणामतः वह जब किसी असहाय व्यक्ति देखता है तो उसकी व्यथा-पीड़ा से द्रवित होकर, अपने सीमित संसाधनों में भी उसकी सहायता करने अथवा उसे सहयोग देने के लिए तत्पर हो उठता है। बालमन में प्रेरणाप्रद कहानियों एवं कविताओं के माध्यम से मानवीय मूल्यों को सहज ही आरोपित किया जा सकता है। जैसे अखण्ड ज्योति में प्रकाशित यह कहानी, 'एक साधु ने अपने सो सकने जितने आकार की एक झोपड़ी बनाई। वर्षा की रात में एक और साधु कहीं से आया। उसने जगह माँगी। झोपड़ी वाले साधु ने कहा, 'इसमें सोने की जगह एक के लिए है, पर बैठे तो दो भी रह सकते हैं।' इस प्रकार दोनों ने आधीरात रात काटी। इतने में एक तीसरा साधु और कहीं से भीगता हुआ आ गया। वह भी आश्रय चाहता था। झोपड़ी वाले साधु ने कहा, 'जगह तो कम है, पर खड़े होकर हम तीनों रात काट सकते हैं।' यदि बाल्यकाल में इस तरह की प्रेरक कहानियाँ सुनाई जाएँ तो इससे बालमन में उदारता का भाव जाग्रत होने के साथ ही बच्चा अपनी वस्तुओं को परस्पर साझा करना तथा दूसरों की सहायता करना भी सीखने लगता है।

मानवीय मूल्यों में एक प्रमुख मूल्य है, नैतिकता अर्थात् वे मानवीय मूल्य जो सभ्य समाज के निर्माण में सहयोगी बनते हैं। 'अखण्ड ज्योति' कभी पौराणिक तो कभी उपदेशात्मक कथाओं और चिंतनपरक वैचारिक अभिव्यक्ति के माध्यम से व्यक्ति को आत्मिक विकास एवं सहज जीवनशैली के अनेक सोपानों का ज्ञान देती है। जैसे, 'प्रेम, सत्य, तप, त्याग की नींव पर खड़ी की गई सुख की इमारत ही शाश्वत है। इससे न सिर्फ हमारा बाह्य जीवन सुखी-संतुष्ट होता है, बल्कि हमारे भीतर भी कभी न सूखने वाली आनंद की निर्झरणी प्रवाहित होने लगती है। ये भावनाएँ मनुष्य को भीतर से भरती हैं।... ...कामनाओं की पूर्ति से सुख प्राप्त नहीं होता; क्योंकि एक के बाद एक कामना जीवनपर्यंत मनुष्य से जुड़ी रहती हैं।' इस लेख को पढ़ते हुए व्यक्ति को अनुभव होने लगता है कि मेरे दुःख एवं चित्त की अशान्ति का वास्तविक कारण क्या है, तथा सुख की प्राप्ति किस प्रकार की जा सकती है।

नैतिकता वे अंतःस्फूर्त तत्त्व हैं, जिन पर मनुष्य का व्यक्तित्त्व विकास एवं उसका स्वास्थ्य निर्भर करता है। ऊर्जा के संरक्षण एवं ऊर्ध्वगमन हेतु नैतिकता का होना नितांत आवश्यक है। प्रख्यात मनोवैज्ञानिक रूडोल्फ विल्किन्सन ने इस संबंध में 'साइकोलॉजिकल डिसऑडर्स कॉज़ एण्ड इफैक्ट' में स्वीकार किया है, 'नैतिकता की नीति पर आस्था रखने वाले लोग प्रायः मनोरोगों के शिकार नहीं होते। इसके विपरीत अनैतिक जीवनयापन करने वालों को प्रायः अनेक तरह के मनोरोगों का शिकार होते देखा गया

है।... ... नैतिक वर्जनाओं की अवहेलनाओं करने वाला निरंकुश भोगवादी रोगों की चपेट में आए बिना नहीं रहता।' नैतिक मर्यादाओं का पालन करने वाला व्यक्ति कठिन तथा विपरीत परिस्थितियों में भी घबराता नहीं है। वह कठिन परिस्थितियों का सामना निर्भयता पूर्वक करता हुआ, आगे बढ़ने का साहस रखता है।

मनुष्य भौतिक सुख प्राप्ति के कितने भी संसाधन क्यों न जुटा ले, किन्तु आंतरिक सुख-शांति की प्राप्ति उसे तभी होती है, जब उसमें देने का भाव जाग्रत होता है तथा वह स्वयं से अधिक दूसरों को महत्त्व देना सीख जाता है। किसी व्यक्ति के विषय में अपनी प्रतिक्रिया देते समय अथवा परनिंदा सुनकर, उसके प्रति निर्णायक बनने अथवा मूल्यांकन करने से पूर्व हमें यह विचार अवश्य करना चाहिए कि अनजाने ही सही, कहीं हम किसी को आहत तो नहीं कर रहे; क्योंकि 'किसी का मूल्यांकन बहिरंग-रूप से नहीं, उसकी संस्कार-निधि द्वारा किया जाना चाहिए। किसी ने पूछा- 'कौए का रंग कैसा है?' उत्तर था, काला। पर विचारशील व्यक्ति ने कहा, 'नहीं, वह काला और सफेद भी है। बाहर से न दीख पड़ने वाला उसका खून लाल और अस्थि-पंजर सफेद होते हैं।' प्रस्तुत प्रसंग द्वारा यह समझाने के प्रयास किया गया है, जो बाहर से दिखाई देता है अथवा जो कुछ हम सुनते हैं, वह पूर्ण सत्य नहीं होता। अत: आँखों देखी तथा कानों सुनी को वास्तविकता अथवा सत्य मान लेना उचित नहीं है।

मानव मूल्य जहाँ मनुष्य को आन्तरिक तथा बाह्य सुख प्रदान करते हैं, वही अनैतिक जीवनचर्या व्यक्ति के पतन का कारण बनती है। क्रोध, बैर, ईर्ष्या जैसे दुर्गुणों के कारण व्यक्ति स्वयं तो नरकीय जीवन का अनुभव करता ही है, उसकी नकारात्मकता आस-पास के परिवेष एवं वातावरण के लिए भी घातक सिद्ध होती हैं। 'स्वर्ग-नरक जो कुछ भी है सब इस धरती पर मौजूद है। परिष्कृत उदात्त मन:स्थिति का नाम ही स्वर्ग है। यही ऐसा वातावरण विनिर्मित करती है कि चारों ओर स्वर्गोपम परिस्थितियाँ स्वत: बनने लगती हैं। मनुष्य यदि चाहे तो निषेधात्मक चिंतन, ईर्ष्या-द्वेष भाव रखते हुए अथवा नरपशु, नर-पिशाच का जीवन जीते हुए नारकीय मन:स्थिति में भी रह सकता है अर्थात् वह अपने भाग्य का निर्माता स्वयं बन सकता है।'

मानवीय मूल्य व्यक्ति के भीतर परिस्थितियों से लड़ने का सामर्थ्य विकसित करने के साथ ही उसे आन्तरिक तथा बाह्य सुख भी प्रदान करते हैं। आलसी और क्रोधी व्यक्ति प्रतिभावान तथा बुद्धिसम्पन्न होते हुए भी अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल ही रहता है। 'क्रोध सुख का सबसे बड़ा शत्रु है। क्रोध मनुष्य को विचारशून्य एवं शक्तिहीन कर देता है। जिस तरह तूफान का प्रबल वेग बाग़-बग़ीचों को झकझोर कर उनका सौंदर्य नष्ट कर देता है, उसी प्रकार क्रोध का तीव्रतम आवेग व्यक्ति के तन-मन में तूफ़ान पैदा कर उससे कई अनर्थ करवा डालता है।' यद्यपि क्रोध के वशीभूत कही गई बातों तथा कृत्यों का स्मरण करके, व्यक्ति मन-ही-मन पश्चाताप करता है, किन्तु दीर्घकाल तक दुख उसे सालता रहता है।

बाल्यकाल जीवन का वह स्वर्णिम कालखण्ड है जिसमें अर्जित अनुभव, अनुभूति और ज्ञान व्यक्ति के भविष्य की दिशा निर्धारित करने में सहायक सिद्ध होते हैं। बाल्यकालीन सुसंस्कार भविष्य की विपरीत परिस्थितियों में भी व्यक्ति को मानवीय मूल्यों से विलग नहीं होने देते। बच्चों को संस्कार उपदेशों से नहीं, बल्कि अपने माता-पिता, परिवारजनों तथा शिक्षकों के आचार-व्यवहार से प्राप्त होते हैं। वे इन्हें

अपना आदर्श मानते हैं; अत: इनके क्रियाकलापों का अंधानुकरण करते चले जाते हैं। 'अखण्ड ज्योति' में प्रकाशित परोपकार का भाव उत्पन्न करने वाली इस लघुकथा में एक संत, निर्धनता के कारण स्वयं को लोकसेवा करने से वंचित समझने वाले, एक निराष श्रमिक का मार्गदर्शन करते हुए कहता है, 'इस क्षेत्र में बहुत से तालाब हैं, पर वे समतल हो गए हैं। उनमें गहराई न रहने से पानी भी नहीं टिकता और प्यासे पशु-पक्षियों को अपनी प्यास बुझाने के लिए दूर-दूर तक जाना पड़ता है। मनुष्यों को भी कम कष्ट नहीं होता। तुम इन तालाबों को जहाँ भी पाओ, अपना परिवार लेकर रहो और श्रमदान से इनका जीर्णोद्धार करते रहो। जिस प्रकार नए मंदिर बनवाने की अपेक्षा पुरानों का जीर्णोद्धार श्रेष्ठ माना जाता है; बच्चे उत्पन्न करने की अपेक्षा रोगियों को सेवा प्रदान करना श्रेयस्कर है; उसी प्रकार श्रमदान करके तालाबों का जीर्णोधार करना परम श्रेयस्कर है।' इस तरह वह संत धन के अभाव को सेवामार्ग में बाधक न मानने की प्रेरणा देकर, श्रमदान का मार्ग दिखाता है।

इसके विपरीत वर्तमान समय में अधिकांश माता-पिता अपने बच्चों को धनोपार्जन की मशीन बनाने के उद्देश्य से उन्हें सूचनात्मक ज्ञान का भंडार बनाते जा रहे हैं। इस सोच संकीर्णता के कारण मानवीय मूल्यों का ह्रास होना स्वाभाविक है; अत: आज हमारे बच्चे बाजारवादी संस्कृति तथा आधुनिकता का अंधानुकरण करते हुए, अपनी गौरवशाली संस्कृति को विस्मृत करने लगे हैं। नि:संदेह इस तरह की चुनौतियों के कारण समाज में परिव्याप्त सोच-संकीर्णता, स्वार्थपरता, ईर्ष्या तथा द्वेषादि भावों की अभिवृद्धि हो रही है; किन्तु इनका समाधान असंभव नहीं। सद्साहित्य एवं प्रेरक प्रसंगों द्वारा भी सोच का परिमार्जन करके, समाज को दिशाहीन होने से बचाया जा सकता है। 'संत फ्रांसिस ने एक कोढ़ी को चिकित्सा के लिए धन दिया, वस्त्र दिए तथा उसकी सफाई आदि कर सेवा-सुश्रुषा की। एक गिरजाघर की मरम्मत के लिए दुकान की कपड़े की गाँठें बेचकर सारा धन दे दिया। उनके पिता को जब यह पता चला, तो उन्हें मारा-पीटा गया तथा संपदा के उत्तराधिकार से वंचित करने की धमकी भी मिली। पिता की धमकी सुनते ही वह यह कहकर घर से निकल पड़े कि आज आपने मुझे एक बहुत बड़े मोह बंधन से मुक्त कर दिया।' दान, परोपकार, त्याग, निर्लिप्तता जैसे मानवीय गुणों के कारण आज भी सेंट फ्रांसिस का नाम विश्व के महान समाज सेवियों में अग्रणी हैं।

विवेकशीलता एक ऐसा मानवीय गुण है, जिसके जाग्रत होने से व्यक्ति को अपने अंतस् में निहित मानवीय मूल्यों का स्वत: ही साक्षात्कार होने लगता है। विवेकी व्यक्ति को ज्ञात होता है कि लोभ, लालच, घृणा, असहिष्णुता, बैर, क्रोध, हिंसा, अहंकार जैसे दुर्गुणों से अपनी रक्षा किस प्रकार की जा सकती है; क्योंकि मनुष्य के जीवन में इन दुर्गुणों का समावेश विवेक की सुषुप्तावस्था में ही संभव है। एक बार 'अंधविश्वास और अहंकार ने निश्चय किया कि हम कुछ ही समय में सारे संसार की विचारशीलता को अपने वश में कर लेंगे और एकछत्र राज्य करेंगे। इच्छित सिद्धि प्राप्त करने के लिए वे पर्वत शिखर पर तपस्या करने लगे। उनकी कठिन साधना से प्रसन्न होकर, देवता ने साधकों से उनका मनोरथ पूछा। जानने पर वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। बोला, 'तुमसे पहचानने से भूल हुई। मेरा नाम विवेक है, मेरे जग पड़ने पर तुम्हारा अस्तित्त्व ही शेष न रहेगा।'

सत्य, प्रेम, करुणा, क्षमा, परोपकार जैसे मानवीय मूल्य जहाँ मानव का उत्कर्ष करते हैं, वहीं ईर्ष्या,

क्रोध, घृणा, अहंकार जैसे दुर्गुण उसके का पतन का कारण बनते हैं। अहंकार मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है; वह उसके व्यक्तित्त्व को धूमिल ही नहीं करता, बल्कि उसकी सर्जनात्मकता को भी कुंद कर देता है। इसके विपरीत यदि कभी मनुष्य का अहंभाव विलीन-विसर्जित होता है तो उसके भीतर सृजनशील गुणों का प्रादुर्भाव होने लगता है। 'अहंकार का नकारात्मक स्वरूप जितना भयावह और भीषण होता है, उसका विधेयात्मक पक्ष उतना ही सृजनशील हो सकता है।... ...अहंप्रधान व्यक्ति का रचनात्मकता की ओर उठा क़दम उसे अपार धैर्यवान, सहनशील, और सहिष्णु बना देता है। ऐसा संकल्पवान जब एक बार कोई काम हाथ में ले लेता है अथवा अपने मन में कुछ पाने का निश्चय कर लेता है तो अपार धैर्य के साथ उसे पूरा करने में संलग्न हो जाता है। चाहे कितनी ही बाधाएँ आएँ, चाहे कितनी ही आलोचनाएँ क्यों न हों, कितनी ही विपदाएँ या परेशानियाँ आकर खड़ी क्यों न हो जाएँ; वह संकल्प को न डिगने देता है और न टूटने देता है। तब तक अविराम पुरुषार्थ करता रहता है, जब तक संकल्प पूर्ण न हो जाए।'

क्षमाशीलता एक ऐसा मानवीय गुण है, जिसके अभाव में व्यक्ति किसी के द्वारा अवहेलना, उपेक्षा, तिरस्कार किए जाने पर स्वयं को अपमानित अनुभव करता है। अहं को ठेस लगते से वह प्रतिशोध लेने के लिए मन-ही-मन योजनाएँ बनाने लगता है और उन्हें क्रियान्वित करने के लिए छटपटाता रहता है। 'चिंतन का प्रभाव चरित्र पर पड़ता है।... ज्ञान की सार्थकता कर्म में है। जीवन साधना के निमित्त जो सोचा, सुना या समझा जाए एसे व्यक्तित्त्व की पवित्रता और प्रखरता बढ़ाने के रूप में कार्यान्वित किया जाना चाहिये।'

मनुष्य से कहीं अधिक कृतज्ञता, प्रेम, लगनशीलता, सहयोग और कार्यक्षमता पशु-पक्षियों में होती है। मनुष्य को इनसे प्रेरणा लेनी चाहिए। 'सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, चींटियों की कार्यक्षमता, लगन और मिलजुलकर काम करने की प्रवृत्ति, जो अपने को बुद्धिमान कहने वाले मनुष्य के लिए भी अनुकरणीय है। आपसी सहयोग की यह प्रवृत्ति चींटियों में जितनी अधिक है, उतनी शायद ही कहीं अन्य हो। एक भूखी चींटी, जब दूसरी पेटभर खाई हुई चींटी के पास जाकर शृंगिका से इशारा करती हुई खाने को माँगती है तो दूसरी अपने शरीर से एक बूँद तरल पदार्थ देकर उसे तृप्त कर देती है।' एक लघुतम प्राणी का आचरण किस प्रकार मनुष्य को सभ्य और सुव्यवस्थित जीवनशैली सिखा सकता है, ऐसे अनेक प्रेरणाप्रद शोधात्मक आलेख 'अखण्ड ज्योति' में सतत् प्रकाशित होते रहते हैं।

मानवीय मूल्य मानव में निहित श्रेष्ठ गुणों के परिचायक ही नहीं, बल्कि सफलता प्राप्ति के मूलमंत्र भी है। यदि व्यक्ति के जीवन में कृतज्ञता, परोपकारिता, एवं सदाचारिता जैसे मानवीय मूल्य विद्यमान होते हैं तो उसमें आत्मविश्वास और दृढ़निश्चयता ही नहीं साहस भी जाग्रत हो उठता है। उत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ कार्यों में शांति से संलग्न व्यक्ति बिना किसी प्रयास के लोकप्रियता तो प्राप्त करता ही है, उसे अपने लक्ष्य में भी सफलता प्राप्त होती है। 'जीवन में सफलता पाने के लिए शांत रहना चाहिए और सरलता व सहजता में घनघोर विश्वास रखना चाहिए। सहज और शांत मन में विवेकपूर्ण विचारों का उदय होता है जो सफलता की अनिवार्य शर्त है। ...यदि कर्म निष्काम भाव से किया जाए तो ज़िन्दगी की दिशाधारा ही बदल जाती है। इससे आंतरिक जीवन पवित्र एवं प्रखर होता है...मन में ईर्ष्या, द्वेष, दुर्भाव जैसे असाध्य मनोविकारों को मन के अंदर जड़ें जमाने का मौका नहीं मिलता।' इस तरह मानवीय मूल्यों से युक्त व्यक्ति अपने

विकास के साथ ही औरों की सफलता तथा विकास की कामना भी करता है। वह दूसरों द्वारा किए गए सहयोग के प्रति सदैव कृतज्ञता का भाव रखता है। कृतज्ञता प्रकट करने से विनम्रता आती है और विनम्रता से अहंकार का नाश होता है।

जीवन को अविरल प्रवाहमान रखने के लिए व्यक्ति का आशावादी होना आवश्यक है। आशावादिता एक ऐसा मानवीय मूल्य है, जो व्यक्ति परिश्रम करने और लक्ष्य की ओर बढ़ते रहने के लिए तो प्रेरित करता ही है, साथ ही उसके आत्मविश्वास को भी क्षीण नहीं होने देता। स्वयं को आशावान बनाए रखने के लिए प्रेरणाप्रद प्रसंगों तथा पुस्तकों का अध्ययन करना आवश्यक है। इससे कोई-न-कोई प्रसंग तथा वाक्य निराश के क्षणों में हमें आशा की किरण दिखाकर, प्रयासरत रहने के लिए प्रेरित करती रहती है। 'परिस्थितियाँ कितनी भी संघर्षपूर्ण एवं जटिल क्यों न हों, पर वे इसलिए हैं ताकि हमारी शक्तियाँ और भी अधिक निखर सकें।...' हमारा व्यवहार ही हमारे व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाता है, इसलिए हमें अपने व्यवहार में सद्गुणों की साधना बहुत ही दृढ़ता से करनी चाहिए।' जैसे वाक्यों को पढ़कर व्यक्ति न चाहते हुए भी आत्मचिंतन करने को विवश हो उठता है, और शनैः-शनैः सकारात्मक क्रियाशीलता उसे न किसी का विरोधी बनने देती है और न उनकी हानि की कामना ही करने देती है।

मानवीय मूल्यों के अभाव में व्यक्ति का जीवन पशुवत ही रहता है; क्योंकि तब वह आत्मसुख और संतुष्टि के लिए दूसरों को क्षतिग्रस्त करने में लेशमात्र भी संकोच नहीं करता। 'भौतिक विकास के साथ-साथ जब तक मानसिक विकास की योजना नियोजित नहीं की जाएगी, मनुष्य के लिए वास्तविक प्रसन्नता पा सकना संभव नहीं। साधनों की एकांगी बढ़ोत्तरी मनुष्य को अधिकाधिक आलसी, प्रमादी, अकर्मण्य, ईर्ष्यालु और स्वार्थी बनाने के साथ-साथ अतृप्त एवं तृष्णाकुल बना देगी।' आज असत्य, असंतोष, असहिष्णुता, स्वार्थपरता, सोच-संकीर्णता आदि के वशीभूत समाज में मानवीय मूल्यों का निरन्तर ह्रास होता चला जा रहा है। इसके दुष्परिणाम अब व्यक्ति एवं घर-परिवार तक ही सीमित नहीं हैं वरन् समाज एवं राष्ट्र की सीमाओं को भी लाँघ चुके हैं।

दया, प्रेम, त्याग, करुणा, परोपकार, सदाचार जैसे मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्त करते लेख तथा कहानियाँ जहाँ, मानव जीवन को अर्थवत्ता प्रदान करती हुई, इन मूल्यों को आत्मसात करने को प्रेरित करती हैं; वहीं जब वह पढ़ता है कि एक स्वार्थी और अहंकारी हाथी, जब एक बटेर की अनुनय-विनय को अनसुना करके जान-बूझकर, उसके सारे अण्डे कुचल देता है तो वह बटेर हाथी को सबक सिखाने के लिए अपने मित्र, कौए तथा मेढक की सहायता से एक योजना बनाती है; ताकि हाथी भविष्य में यह अनर्थ दुबारा न कर सके। योजना के अनुसार सबसे पहले कौआ हाथी की आँखें फोड़ देता है; उसके बाद मेढक पहले पर्वत पर चढ़कर टर्र-टर्र की आवाज़ करता है। प्यासा हाथी जब तक पर्वत पर जाता है, तब तक मेढक नीचे आकर वहाँ पर टर्राने लगता है। भ्रमवश हाथी नीचे पानी होने का अनुमान लगाकर, जैसे ही नीचे उतरता है तो उसका पैर फिसल जाता है और गड्ढे में गिरने से उस दुष्ट हाथी की मृत्यु हो जाती है। इस कहानी को पढ़कर, बच्चे को यह समझते देर नहीं लगती है कि बुरे कर्मों का फल सर्वथा बुरा ही होता है। घृणा, अंहकार, क्रोध, बैर जैसे नकारात्मक मनोभावों को व्यक्ति के पतन का कारण बनते हुए देखकर, पाठक अनुभव करता है कि इनको त्यागने में ही कल्याण है।

1996 से 2004 तक की 'अखण्ड ज्योति' पत्रिकाओं का गहन अध्ययन करने के उपरान्त कहा जा सकता है, वास्तव में 'अखण्ड ज्योति' आचार्य श्रीराम के चिंतन-मनन-मंथन और साधना की वह मशाल है, जिनमें प्रकाशित विचारों का प्रकाश युगों तक व्यक्ति व समाज का पथ आलोकित करता हुआ, उसे पथभ्रष्ट होने से बचाता रहेगा। इसमें जिस तरह अनेक व्यवहारिक उदाहरणों के माध्यम से व्यक्ति को खान-पान, रहन-सहन, चिंतन, व्यवहार आदि संबंधी दिशानिर्देश देकर, उसे मानवीय गुणों से परिचित कराने तथा संस्कारित करने का प्रयास किया गया है; वह व्यक्ति अथवा वर्ग विशेष के लिए नहीं, प्रत्येक जन के लिए सहज ग्राह्य हैं। अप्राकृतिक खानपान, किस प्रकार विकास मार्ग में अवरोधक बनता है, तथा सात्विक भोजन का जीवन में क्या महत्त्व है, को प्रतिपादित करती हुई, 'अखण्ड ज्योति' भावी पीढ़ी के लिए भी शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थता प्रदान करने में भी सहायक बनी रहेगी। सरल भाषा में लिखी गईं पौराणिक एवं काल्पनिक लघुकथाएँ तथा प्रेरक प्रसंग पढ़कर, बच्चे एवं साक्षर व्यक्ति भी मानवीय मूल्यों के महत्त्व को सहज ही समझ सकते हैं।

सम्पर्क : *हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)*
मो. 9411196868,

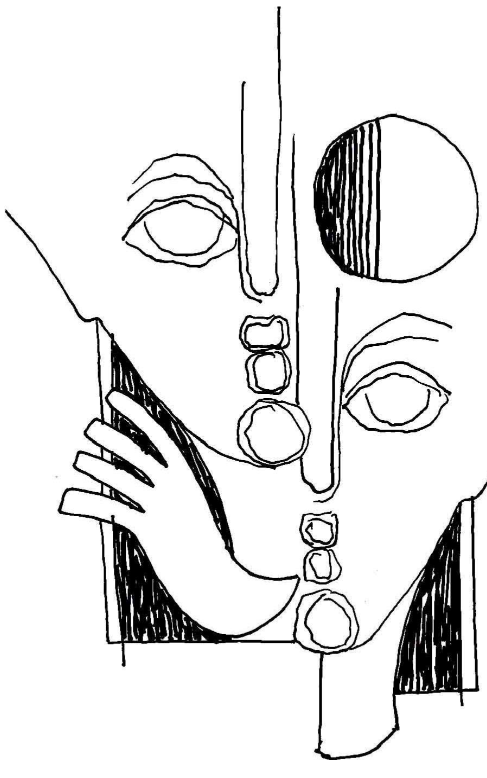

जितेन्द्र निर्मोही

आख्यायिकाओं की आख्यायिका है 'वेदवती' उपन्यास

बहुत से लेखकों ने साहित्य अपनी परिपक्व वय में लिखा और उन्होंने बहुत सम्मान पाया। 'वेदवती' के उपन्यासकार विश्वामित्र दाधिच भी संभवतया इसी श्रृंखला में शुमार किये जायेंगे। विश्वामित्र, दाधिच ने सत्तर के दशक से नीरज, बालकवि बैरागी, चन्द्रसेन विराट, अशोक चक्रधर, निर्भय हाथरसी आदि के साथ राष्ट्रीय मंचों पर ख्याति पाई है। साहित्यकार के रूप में उनका इस तरह आना किसी कोतूहल से कम नहीं। जयशंकर प्रसाद, रामधारी सिंह दिनकर जैसे महनीय कवियों ने वैदिक एवं पौराणिक संदर्भों का विशद् अध्ययन कर हमे कालजयी कृतियाँ दी हैं।

जिज्ञासु कवि विश्वामित्र दाधिच सोचते हैं हमारे वंश को जन्म देने वाले तो दधिचि ऋषि हैं उन्हें हर कोई जानता है किन्तु वो माता जिससे हमारा वंश चला वो कौन थी? प्रत्युत्तर फलस्वरूप वे माँ वेदवती की खोज पौराणिक आख्यायिकाओं से करते हैं, और उन्हें समन्वित कर एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास 'वेदवती' का सृजन कर देते है। यह संदर्भित सत्य हैं।

वर्णात्मक शिल्प विधि के उपन्यासों का प्राण तत्व है उनका विस्तृत होना और उनका दीर्घाकार होना ही उनकी विशेषता है किन्तु आज के व्यस्त समय में जब कथा ही लघुकथा का रूप ले रही हो ऐसे समय में वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले पाठक सीमित आकार का उपन्यास चाहते हैं। जिसमें अरुचिकर संदर्भ न हो। पाठक चाहता है कम वर्णन में अधिक से अधिक सत्य और घटनाएँ उपन्यास में आ जाएँ।

यही प्रयोग किया है विश्वामित्र दाधिच ने 'वेदवती' में उपन्यास में जिसका कलेवर संग्रह के छोटे छोटे सत्रह अध्यायों में बँधा हुआ है। वैदिक संदर्भों की आख्यायिकाएँ जुड़कर दूसरे में जा मिलती है। सच कहा जाए तो यह उपन्यास आख्यायिकाओं की आख्यायिका है।

लेखक उपन्यास 'वेदवती' नारी प्रधान उपन्यास है, जिमें स्त्री संघर्ष को दिखाया गया है। लेखक अपने मनोभाव में नारी के प्रसंग को उठाते हुए मनुस्मृति के अध्याय-9 के श्लोक 26 में मनु द्वारा नारी की प्रशंसा इस तरह करते प्रकट दिखाई देते हैं :-

'पूजानार्थ महाभाग: पूर्जाहा गृह दीप्तय:
स्त्रीय: श्रियश्च गेहुषु न विशेषोस्ति कश्चन:'

नारी वंश वृद्धि करने के कारण उपकार करने वाली पूजनीय घर की शोभा स्वरूपा है। जैसे लक्ष्मी

के बिना घर की शोभा नहीं है, ऐसे ही स्त्रियों के बिना घर की शोभा नहीं होता।

यह उपन्यास उपन्यासकार ने दधिचि समाज के लिए ही नहीं वरन् सम्पूर्ण मानव जाति की चेतना के लिए सृजित किया है। वस्तुत कला का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। लेखक का दृष्टिकोण भाव, कथानक, परिवेश, सौंदर्य, वस्तु विस्तार, चरित्र गठन, संवाद वातावरण सभी मिलकर एक जीवन की रचना करते हैं। यहाँ भी वही दिखाई देता है 'वेदवती' की संवाद शैली बड़ी सहज है जो पाठक को बोझिल नहीं करती। उदाहरणार्थ :-

शांता अचानक गंभीर होकर बोली- 'स्वामी मैं कुछ कहना चाहती हूँ। वस्तु मैं संकोचवंश नहीं कह पा रही हूँ'।

अथर्व बोले-'कहो देवी आपके लिए कोई बंधन नहीं है। मैं आपके मनोभाव पढ़ रहा हूँ। जरूर मन में कोई विशेष प्रयोजन है।' (वेदवती : अध्याय दो-पृष्ठ 15)

नारी प्रधान उपन्यास में स्त्री मनोविज्ञान रहता है जहाँ उपन्यासकार स्त्री स्वभाव से दो चार होता है और वो अपने अनुभव को उपन्यास में समावेशित करता है। उपन्यासकार प्रथम अध्याय में ही ऐसी मनोदशा को दर्शा देता है। हमारे यहाँ आम धारणा है कुँवारी कन्याएँ दुर्गा का पूजन करने मंदिर जाती हैं। यहाँ भी वेदवती अपने सहेली सुवृता के साथ पूजा करने जाती है। लौटते समय सुवृता वेदवती के सौंदर्य का बखान करती है। कुछ समय बाद ही वेदवती सोचने लगती है-'क्या सुवृता सही कह रही है? क्या मुझे देखकर देवलोक की अप्सराएँ भी ईर्ष्या करती होंगी? क्या मेरे लिए देवलोक भी आकर्षित होंगे? क्या विधाता ने मुझे इतना विचित्र और प्रभावशाली बना दिया है?'

उपन्यास के पात्र और घटनाएँ सीमित हैं। उनका फैलाव संक्षिप्त 17 अध्यायों में जरूर है। यह उपन्यासकार की कलाकारी है। यहाँ मूल रूप से तीन परिवार हैं और उनकी घटनाएँ हैं। पहला मणिवृत के राजा तृणबिन्दु उनकी रानी और उपन्यास नायिका वेदवती, दूसरा परिवार शांता अथर्व दम्पति, उनका पुत्र दधिचि, बहिन दधिमति और दैत्य गुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी का परिवार। यहाँ देवयानी के माध्यम से जो राजा ययाति की महत्त्वपूर्ण जीवन गाथा को रूपायित किया गया है। दधिचि है, तो असुर वृत्तासुर को होना भी जरूरी है, क्योंकि उसका वध दधिचि की वज्र अस्थियों से ही होता है। दैत्य दानव षडयन्त्र और इन्द्र ऐसे आख्यायिकाओं में आवश्यक होते हैं।

इस उपन्यास में मिथकीय धारणाएँ भी हैं जो जरूरी हैं। सम्पूर्ण उपन्यास नायिका वेदवती के इर्द-गिर्द ही घूमता है। वेदवती-देवयानी का संवाद इसे विस्तार देता है। वेदवती जीवट वाली राजकुमारी है। वो अपने नायक का वरण राजकुमार के रूप में नहीं अपितु एक तेजस्वी तपस्वी के रूप में करती हैं। इस पथ में उसे दधिचि मिल ही जाता है। वेदवती क्षत्रिय कन्या है जिसका विवाह ब्राह्मण पुत्र दधिचि से होता है और देवयानी ब्राह्मण पुत्री का विवाह क्षत्रिय ययाति के साथ। संदर्भवश यहाँ जाति बंधन की धारणाएँ टूटती नजर आती हैं। वृत्तासुर को वरदान था कि वह अस्त्र-शस्त्र से नहीं मरेगा। इसके लिए इन्द्र को वज्र के लिए हड्डियों की आवश्यकता होती है। वृत्तासुर वध दधिचि की हड्डियों से ही संभव है। अंत में इन्द्र द्वारा महर्षि दधिचि से प्रार्थना की जाती है और दधिचि योग द्वारा अपना प्राण त्याग देते हैं। वेदवती ऋषि दधिचि को कुटिया में यथास्थान न पाकर आशंकित हो जाती है। उसे पहले ही से इन्द्र पर शक था।

आशंका सत्य घटना में बदलते देख वेदवती भी महर्षि दधिचि के साथ अपने प्राण त्यागना चाहती है, परन्तु आकाशवाणी द्वारा उसे सचेत किया जाता है 'वेदवती तुम्हारे गर्भ में महर्षि दधिचि की संतान पल रही है।' वे शल्य प्रक्रिया से अपने बालक को बाहर निकालकर वृक्ष को सौंप देती हैं और उनसे रक्षा करने का निवेदन करती है, बालक से क्षमायाचना सहित वे अग्निवेदी को अपनी देह समर्पित कर देती हैं। इस प्रकार उपन्यास 'वेदवती' का इतिवृत्तात्मक ढंग से समापन होता है।

इस उपन्यास की कुल पृष्ठ सं. 88 है। प्रकाशन वर्ष 2020 है। यह ज्ञान गीता प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। हाड़ौती अंचल के उपन्यासकारों की शीर्ष पंक्ति में लज्जाराम मेहता का नाम आता है। वे हिन्दी साहित्य में भी अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। डॉ. नरेन्द्र चतुर्वेदी अपनी समालोचना की कृति 'हाड़ौती अंचल की हिन्दी गद्य परंपरा और विकास' में यह उल्लेख करते हैं। इस अंचल के अन्य उपन्यासकारों में शचीन्द्र उपाध्याय, डॉ. दया कृष्ण विजय, डॉ. शांति भारद्वाज, डॉ. क्षमा चतुर्वेदी, जितेन्द्र निर्मोही आदि आते हैं।

हिन्दी साहित्य में 'वेदवती' उपन्यासकार का आगमन हमें नवीन संदर्भों से जोड़ता है। यह पौराणिक आख्यानों को जोड़कर लिखा गया उपन्यास है। इसमें पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग है जो उपन्यास का प्राणतत्व है। अपने पहले उपन्यास में ही उपन्यासकार विश्वामित्र दाधिच ने कथात्मकता से साथ काव्यात्मकता का सुंदर निर्वाह किया है, शिल्प विधान का निर्वाह भी उत्तम है जो प्रथम अध्याय से अंतिम अध्याय तक सतत् प्रवाह में रहता है। भाषा और शिल्प का तारतम्य उपन्यास के कथ्य विधान में बराबर बना रहता है। विषय सामग्री अंतर्गत उपन्यासकार ने सुंदर सामग्री का चयन व अध्ययन किया है। यहाँ उपन्यासकार की बिम्बधर्मिता भी स्वागत योग्य है किन्तु उपन्यास का लघु कलेवर में होना कहीं न कहीं खटकता ही है। इसे प्रकृति सौंदर्य से विस्तार दिया जा सकता था। हाँ यह सच है कि उपन्यास पाठक को अन्त तक बाँधे रखता है, जो इसकी सफलता का सूचक है। उपन्यास 'वेदवती' का हिन्दी साहित्य में व्यापक स्वागत होगा। इसी आशा के साथ हिन्दी उपन्यास जगत में उपन्यासकार के रूप में प्रवेश पाने वाले विश्वामित्र दाधिच को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ।

कविता के लिए विद्वान डॉ. भगवती लाल व्यास कहते हैं- अच्छी कविताएँ ज्ञान वृद्धि के साथ-साथ आनंदित भी करती हैं, सच है। उपन्यास जीवन चरित्र जब आदर्शोंमुखी होते हैं तो वे हमें संस्कारित करते हैं। समालोचक विजय जोशी का कथन बिल्कुल सही है कि उपन्यासकार समाज को उसकी भाषा देता है। प्रेमचंद्र का गोदान इसका उदाहरण है। गोदान उपन्यास ने उस समय समाज को उर्दू अदब के संस्कार दिये। सच तो यह है कि वर्तमान समय में हमें हमारे सांस्कृतिक मूल्यों के साथ-साथ उनके संरक्षण की भी आवश्यकता है। ऐसे में यह उपन्यास 'वेदवती' निश्चित रूप से आज के समाज की आवश्यकता है।

सम्पर्क : कोटा (राज.)
मो. 9413007724

डॉ. रामकिशोर उपाध्याय

भारतीय साहित्य में वैचारिक प्रतिबद्धता : भ्रांतियाँ और सत्य

रूस में बोल्शेविकों की साम्यवादी सरकार बनते ही उन्होंने अतीत की समग्र बौद्धिक सम्पदा को निरस्त करते हुए अपनी विचारधारा के अनुरूप नया साहित्य रचा और यह मान लिया कि रूस का वैचारिक विकास और इतिहास यहीं से आरंभ होता है। यद्यपि उनका यह भ्रम शीघ्र ही समाप्त हो गया। द्वितीय विश्व युद्ध के समय अपने नवयुवकों में जोश भरने के लिए, उन्हें अतीत और राष्ट्रीयता की भावना का स्मरण करना ही पड़ा। साम्यवादी एजेंटों ने भारत में स्वतंत्रता पश्चात् अराजकों की ऐसी ही सरकार बनाने की इच्छा से वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए 10 अप्रैल 1936 के दिन सज्जाद ज़हीर के माध्यम से प्रगतिशील लेखक संघ नाम से एक साहित्यिक संगठन खड़ा किया। उन्होंने रूस की भाँति भारत के प्राचीन साहित्य (जो कि महान साहित्यों में गिना जाता है) को अप्रगतिवादी कह कर उपेक्षित करना आरंभ किया। माओ, लेनिन, स्टालिन आदि से प्रेरित होकर जो कुछ भी लिखा अथवा भारत के मूल चिंतन के विरुद्ध जो कुछ भी लिखा, केवल उसी को श्रेष्ठ साहित्य माना। ऐसे तथाकथित साहित्यकार स्वयं को प्रगतिशील, प्रगतिवादी या कम्युनिस्ट मानते हैं। वे ऐसा मानकर चलते हैं अथवा प्रदर्शित करते हैं कि भारत को असली साहित्य प्रगतिशील या प्रगतिवादियों ने ही दिया है। इससे पूर्व या बाद में उनके झंडे एवं एजेंडे से भिन्न संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी (ब्रज भाषा, अवधी, खड़ी बोली आदि से लेकर आज की मानक हिन्दी) में जो कुछ भी लिखा गया है, जिसे साम्यवाद के साथ न जोड़ा जा सके वह सहित्य सांप्रदायिक,अनुपयोगी,अप्रगतिशील है अत: ये लोग उसे विमर्श के योग्य नहीं मानते। जैसे देश में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है वैसे ही मानने की स्वतंत्रता भी तो है, इसीलिये कम्युनिस्ट लेखक कुछ भी मानने को स्वतंत्र हैं। किसी के मानने न मानने से, न तो सत्य बदलता है और न ही झूठ स्थापित होता है। यद्यपि बड़ी संख्या में ऐसे विद्वान साहित्यकार भी हुए हैं जिन्होंने प्रगतिशील संघ के साथ रहते हुए भी भारतीय संस्कृति, धर्म और प्राचीन साहित्य के प्रति अपनी गहरी श्रद्धा व्यक्त की है। ऐसे कई विद्वानों को कम्युनिस्ट आलोचकों ने ख़ारिज कर दिया और कई स्वयं ही प्रगतिशील संघ से नाता तोड़कर स्वतंत्र मार्ग पर चल निकले। इसमें तो कोई संदेह नहीं है कि साम्यवाद से प्रेरित लेखकों ने राजनीतिक संरक्षण पा कर अथवा पाने के लिए भारतीय इतिहास की भाँति साहित्य में भी अनेक भ्रम भर दिए। उनकी निष्ठाएँ/ प्रतिबद्धताएँ संस्कृति, साहित्य, मानवता एवं समाज के स्थान पर अपनी विचारधारा के प्रति ही रहीं।

हिन्दी के वरद पुत्र श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने आकाशवाणी पर दिए गए लम्बे साक्षात्कार में एक प्रश्न के उत्तर में कहा 'प्रगतिवादी अन्दोलन तब से और जो उसकी परिणति हुई उस तक, उसमें यही था कि राजनीति की दृष्टि से हमारा 'क्रीडो' होना चाहिए। लगभग एक जैसे धर्म में, एक धर्ममत या धर्मबीज का महत्व होता था कि यह मानो तो तुम धर्म के भीतर हो, नहीं तो काफ़िर हो। उसी तरह का एक राजनीतिक मतवाद भी था कि अमुक-अमुक धर्म बीज हैं अगर तुम्हारे धर्म इनको मानते हों, तब तो तुम हमारे साथ हो, नहीं तो तुम काफ़िर हो।' (अज्ञेय अपने बारे में, रेडियो जीवनी पृ.क्र.59) अज्ञेय जी के कथन से इस बात का अनुमान किया जा सकता है कि प्रगतिशील आन्दोलन के नाम पर किस प्रकार की भयानक घेरा बंदी की गई।

इसी पृष्ठ पर अगले प्रश्न के उत्तर में अज्ञेय जी ने प्रगतिवादियों के संगठन के बढ़ने-घटने की बात को यों स्पष्ट किया है 'और प्रगतिवाद लगातार चुन-चुनकर ऐसे लोगों को बाहर निकालता गया' उसके अपने इतिहास में यह था कि जब उसको एक 'पॉपुलर फ्रंट' की आवश्यकता हुई, तब उसने बहुत से लोगों को अपनी ओर खींचा और फिर उसके बाद इसी आधार पर, कि यह सौ प्रतिशत हमारी नीतियों को मानते हैं या नहीं उनको निकाला गया और उसका परिणाम यह हुआ था कि दो-तीन आलोचकों को छोड़कर कोई लेखक सही अर्थ में प्रगतिशील बचा ही नहीं था।' इससे एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि जब उन्हें (कम्युनिस्टों को) लोकप्रिय फ्रंट बनाने की आवश्यकता होती है तब वे समाज के सम्मानित जनों को सामाजिक न्याय, वंचितों के हित जैसे भावनात्मक विचारों का सहारा लेकर जोड़ लेते हैं। फिर उसका कम्युनिस्टीकारण करना आरंभ करते हैं। इस क्रम में प्रगतिशील लेखक संघ को जब अपनी लोकप्रियता और ग्राह्यता में वृद्धि करनी थी तब घर-घर जा कर सभी लब्धप्रतिष्ठित साहित्यिकों को मान-सम्मान देकर भरती कर लिया। प्रेमचंद, राहुल सांकृत्यायन, जैनेन्द, यशपाल, रामविलास शर्मा से लेकर अब तक यह भरती और बर्खास्त करने की प्रक्रिया अनवरत चल रही है। भारत में जब प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई तब जानबूझकर सुनियोजित ढंग से प्रेमचंद जी जैसे बड़े लेखक से अध्यक्षता कराई गई ताकि उनकी लोकप्रियता का लाभ लेकर अन्य साहित्यकारों को सहजता से जोड़ा जा सके। प्रेमचंद जी की लोकप्रियता को भुनाने के लिए उन्हें प्रगतिशील घोषित कर दिया गया जबकि उन्होंने स्वयं अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में साहित्यकारों के लिए प्रगतिशील शब्द को ही अनावश्यक माना था। उस भाषण में प्रेमचंद जी ने जो-जो बातें साहित्यकारों के लिए कहीं प्रगतिवादियों ने उनमें से कितनी बातें मानीं?

प्रेमचंद जी का लेनिन से कुछ भी लेना-देना नहीं था। देश के अधिकांश विद्वान अब इस बात को जानने और मानने लगे हैं कि 'प्रेमचंद जी मार्क्सवादी नहीं मानवता वादी' लेखक थे। प्रगतिशीलता के नाम पर कम्युनिस्टों द्वारा साहित्य में और पाठकों के दृष्टिकोण में विकृति लाने का जो उपक्रम किया गया उसी का परिणाम है कि प्रेमचंद जी के जन्मदिवस के अवसर पर उनके उपन्यास रंगभूमि की प्रतियाँ जलाई गईं। दिल्ली में प्रेमचंद का साहित्य जलाने वाले लोग वे ही हैं जिन्हें जाति धर्म के आधार पर साहित्य से घृणा करना सिखाया गया। जाति, धर्म और संप्रदाय के नाम पर सहित्य का मूल्यांकन करने वाले प्रगतिशीलों की ना प्रेमचन्द जी में आस्था है और न ही उनके साहित्य में, उनकी आस्था साम्यवादी दल के

विस्तार में हैं। कम्युनिस्टों ने देश के दलितों से कहा कि भारत का प्राचीन साहित्य सवर्ण हिन्दुओं ने लिखा है इसका विरोध करो। मनमानी, दोषपूर्ण और अतिरंजित व्याख्याएँ करके हिन्दू विरोधी साहित्य लिखवाया गया फिर जातिवादी साहित्य लिखवाया गया, आज वे ही तथाकथित प्रगतिवादी दलित प्रेमचंद जी के उपन्यासों में आग लगा रहे हैं। उनका आरोप है कि प्रेमचंद जी ने उनके लिए जो जातिसूचक शब्द और संवाद प्रयोग किये हैं, वे अभद्र और अपमान जनक हैं। यदि मान लिया जाए कि प्रेमचंद का साहित्य प्रगतिशील साहित्य है तो अब प्रगतिशील दलित उसमें आग क्यों लगा रहे हैं। मेरे विचार से प्रेमचंद जी जैसे महान साहित्यकार को प्रगतिशील लेखक संघ के भूमिपूजन में पधारने का दंड भुगतना पड़ रहा है। प्रेमचंद जी और उनके साहित्य को साम्यवादी द्रष्टि या किसी अन्य विचारधारा में बाँधकर देखना ठीक नहीं है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि कम्युनिस्ट लेखक प्रगतिशील लेखक संघ के संस्थापक सज्जाद ज़हीर पर विमर्श नहीं करना चाहते। ये वही व्यक्ति हैं जिन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ की नींव रखी फिर कम्युनिस्ट पार्टी के प्रमुख नेता बन गए और बाद में भारत छोड़ पकिस्तान चले गए। देश की युवा पीढ़ी को यह पता होना चाहिए कि सज्जाद जैसे लोगों ने हिन्दुओं से पृथक इस्लामिक देश बनाने के लिए साहित्य के नाम पर क्या-क्या किया?

निराला जी ने एक कविता 'अबे सुन बे गुलाब' क्या लिख दी उन्हें साम्यवादी घोषित कर दिया गया। आदरणीया महादेवी जी वर्मा ने एक साक्षात्कार में स्पष्ट रूप से कहा है कि 'साम्यवादी सच्चे मन से निराला हो जाएँ यह तो बहुत मुश्किल है' मैं इसे यों कहता हूँ कि जो एक बार निराला हो जाए, वह कभी साम्यवादी हो ही नहीं सकता। निराला जी तो संत थे, एक ऐसे संत जो अपना सर्वस्व दान करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। निस्पृह निराला का शव अस्पताल के सामने सड़क पर पड़ा था तब मात्र एक फटी चादर थी उनके तन पर, उपचार के लिए भी पैसे नहीं थे। अपनी पुस्तकों की रॉयल्टी भी निर्धनों में बाँटते रहे, मरणोपरांत उनके घर में क्या पूँजी निकली एक टूटा-सा बक्सा और उसमें भी दो पुस्तकें एक पैराडाइज लॉस्ट और दूसरी भगवत गीता। जिस महान कवि ने भयानक कष्ट सहते हुए भी जीवन के अंतिम समय तक श्रीमद भगवत गीता की आराधना नहीं छोड़ी, जिसके ह्रदय में राम की शक्ति पूजा धड़कती हो, ज्ञान और त्याग की उस अपरिमित जल राशि को साम्यवाद की कटोरी में भरने का प्रयास करना व्यर्थ है। मानव मात्र पर दया करने वाले निराला को माओ और स्टालिन जैसों की क्रूर हत्यारी विचारधारा के साथ जोड़ना निराला जी की साहित्य साधना का अपमान होगा।

ऐसा कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है किन्तु प्रगतिवादियों ने इसे बदल दिया, उनका साहित्य साम्यवाद का दर्पण है। वे अपनी सुविधा और आवश्यकता से किसी भी दिवंगत महापुरुष को अपने दल में भरती कर लेते हैं। कहीं, किसान, मजदूर, निर्धन पर कुछ लिख दिया तो बस उसे अपने खेमे में खींच लिया। प्रगतिवादी साहित्य के दर्पण में साम्यवाद के अतिरिक्त अन्य किसी भी मत, पंथ संप्रदाय की छवि देखते ही वे उसे ख़ारिज कर देते हैं। रामविलास शर्मा जी ने जीवन भर साम्यवाद का झंडा उठाया किन्तु भारतीय संस्कृति की प्रसंशा करने और आर्यों को भारत का मूल निवासी कहने के कारण उन्हें अब उतना सम्मान नहीं दिया जाता जैसा कि आरंभिक दौर में दिया जाता था। वहाँ इस्लाम के अतिरिक्त अन्य किसी धर्म की प्रशंसा या पालन की अनुमति नहीं दी जाती। आप चाहे कविता, कहानी,

उपन्यास, लघुकथा या जो कुछ भी लिखें उसमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मार्क्स-लेनिन-स्टालिन का फ्लेवर होना आवश्यक है। बाद में (स्वतंत्रता के बाद) जब धर्म के आधार पर प्रगतिवादियों ने भारत विभाजन करा लिया तब सज्जाद ज़हीर, फैज आदि प्रगतिशील कम्युनिस्ट नेता विजित मुद्रा में अपने सपनों के इस्लामिक देश पाकिस्तान चले गए। कैफ़ी आज़मी, इरफ़ान हबीब आदि कम्युनिस्ट जो भारत में रह गए उन्होंने साम्यवाद के नाम पर साहित्य, शिक्षा, इतिहास के नाम पर अपना एजेंडा चलाया। विडंबना की बात तो यह है कि जिन भगोड़े कम्युनिस्टों को पाकिस्तान ने डंडे मारकर वहाँ जेलों में डाल दिया उन्हें भारत के कम्युनिस्टों ने यहाँ ससम्मान वापस बुला लिया और पुन: साहित्य, सिनेमा और समाज में स्थापित कर दिया। इन सब ने आगे चलकर कांग्रेस में घुसपैठ करके पहले बाल गंगाधर तिलक और सुभाष चन्द्र बोस के राष्ट्रवाद को साइड लाइन किया फिर पूज्य बापू के गाँधीवाद को भी ठिकाने लगा दिया।

जैनेन्द्र कुमार जी ने 1939 में प्रस्तुत प्रश्न पुस्तक में मार्क्सवाद को लेकर जो विचार व्यक्त किए उनसे यह समझा जा सकता है कि जैनेन्द्र जी जैसे साहित्यकार जो कभी प्रगतिशील लेखक संघ के संस्थापकों के साथ समारोह में उपस्थित भले ही रहे किन्तु मार्क्सवाद को लेकर वे पूर्णत: स्पष्ट थे। उन्होंने इस पुस्तक में पृ.क्र.217 पर लिखा 'मार्क्सवाद जीवन खोज का परिमाण अर्थात् जीवन दर्शन नहीं है। वह एक राजनीतिक प्रोग्राम का बौद्धिक समर्थन है।' इसी पृष्ठ पर वे आगे लिखते हैं। 'मर्क्सिज्म स्थिति से व्यक्ति को नहीं जोड़ता। उसकी दृष्टि से दोष अपने में देखने की जरूरत कम होजाती है और दोषारोपण सामाजिक परिस्थिति में किया जाने लगता है।' मेरे विचार से मार्क्सवाद का यह सूत्र बहुत से लोगों को भा गया और उन्होंने अपनी अकर्मण्यता का दोष भी सामाजिक परिस्थति के माथे मढ़ दिया।

यशपाल जी ने भी एक महत्त्वपूर्ण बात को रेखांकित किया है 'मार्क्सवाद कहता है कि न्याय और परोपकार में भी स्वार्थ की भावना होती है।' संभव है मार्क्स ने यूरोप में जो चैरिटी देखी हो या कहें कि ईसाई मिशनरियों द्वारा परोपकार की आड़ में स्वार्थ सिद्धि देख कर उनके मन में ऐसी बात आई हो किन्तु भारत के सन्दर्भ में ऐसा सतही दृष्टिकोण ठीक नहीं है। हमारे यहाँ नि:स्वार्थ परोपकार की सुदीर्घ परंपरा है। किन्तु भारत के कम्युनिस्ट विचारकों ने मार्क्स के प्रभाव में आकार भारतीय परम्पराओं की दोष एवं दुराग्रहपूर्ण व्याख्या को ही प्रगतिशील दृष्टिकोण मान लिया है, ऐसा प्रतीत होता है।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन जी जो कि प्रगतिशील लेखक संघ के बड़े ध्वज वाहक हुआ करते थे उन्होंने 1950 में आज की संस्कृति में लिखा 'इस्लाम ने जो भी कहा हो, किन्तु मुसलमानों ने अपने आपको देश की धारा का अंग बनने से सदा इनकार किया है।' राहुल सांकृत्यायन जी जैसे विद्वान ने यों ही इतनी बड़ी बात नहीं कही होगी। सज्जाद ज़हीर से लेकर फैज तक और दिल्ली, अलीगढ़ से लेकर लाहौर तक के बड़े-बड़े कम्युनिस्ट प्रगतिवादियों को उन्होंने समीप से देखा और अनुभव किया था। डॉ.रामविलास शर्मा जी ने प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ पुस्तक में सांकृत्यायन जी के इस विचार पर बड़ी कठोर टिप्पणी की है। उन्होंने राहुल जी को हिन्दू महासभा के नेताओं से भी आगे बता दिया। किन्तु इस बात का उत्तर तो रामविलास जी भी नहीं दे सके कि स्वयं को प्रगतिशील कहने वाले मुसलमान भी भारत विभाजन में अग्रणी क्यों रहे? उन्होंने भारत छोड़ इस्लामिक देश पाकिस्तान क्यों चुना। उन्होंने देश के स्थान पर अपने धर्म को अधिक महत्व क्यों दिया? क्या इसे हिन्दू कम्युनिस्टों के साथ मुसलमान

कम्युनिस्टों का छल नहीं माना जाए कि देश को स्वाधीन कराने के नाम पर जिस प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई उसके मुख्य संस्थापकों का लक्ष्य स्वाधीनता की आड़ में भारत को तोड़ कर अपने लिए इस्लामिक देश का निर्माण करना था।

साम्यवादियों ने साहित्य के नाम पर भारत की संस्कृति, भारतीय धर्मों, मान्यताओं पर जैसा आघात किया है वैसा आघात अरब, ईरान और तुर्क के धर्म-संस्कृति पर क्यों नहीं किया? वे हिन्दुओं के धार्मिक साहित्य पर तो खूब टीका-टिप्पणी करते हैं किन्तु इस्लाम के धार्मिक साहित्य की समीक्षा करने का साहस नहीं दिखा पाते क्यों? यदि कोई हिन्दू कम्युनिस्ट बन जाए तो उसके लिए धर्म (रिलीजन) अफीम है, इससे दूर रहो किन्तु मौलाना हसरत मोहानी कम्युनिस्ट भी थे और हज करने भी जाते थे, ये कैसी प्रतिबद्धता है? हरिशंकर परसाई जी ने एक स्थान पर लिखा है कि 'ब्रिटेन के केंटबरी चर्च के बिशप डॉ. जोनसन थे, जो साम्यवादी थे। वे 'रेड डीन' कहलाते थे उनकी मुलाकात स्टालिन से भी हुई थी।' यह कैसी विचित्र बात है कि ईसाई और मुसलमान बंधुओं ने कम्युनिस्ट होते हुए भी अपने धर्म (रिलीजन) से कोई समझौता नहीं किया और कामरेडों ने कभी भी उनका उपहास नहीं किया किन्तु हिन्दू कामरेड मंदिर जाए, धर्म की बात करे तो उसकी खैर नहीं। डॉ.जोनसन ने स्टालिन से मिलने के पश्चात् भी अपना धर्म नहीं छोड़ा किन्तु हमारे कुछ हिन्दू कामरेड तो अभी भी स्टालिन का चित्र देख कर ही अपनी धार्मिक आस्थाएँ छोड़ भागते हैं, और कुछ को नास्तिकता के दौरे पड़ने लगते हैं क्यों?

धर्मवीर भारती जी ने 'प्रगतिवाद एक समीक्षा' में लिखा था कि 'स्वयं प्रगतिवादियों ने भी सिवा तीखी, अवसरवादी, आलोचनाओं तथा गाली-गलौच के, अभी तक गंभीरता और शांति से समस्याओं के विश्लेषण में उदारता, समझदारी और दूरदर्शिता का परिचय नहीं दिया है।' भारती जी तो यहाँ तक कह गए कि 'भारत की कम्युनिस्ट पार्टी भारत के लिए नहीं है और चाहे जिसके लिए हो।' इन टिप्पणियों से समझा जा सकता है कि कम्युनिस्ट साहित्यकारों की वैचारिक प्रतिबद्धता किसके प्रति थी और है।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की बात करने वाले केवल अपनी अभिव्यक्ति को ही महत्त्वपूर्ण मानते हैं। दूसरे विचार को तो वे सुनना भी पसंद नहीं करते। कुछ वर्ष पूर्व हंस पत्रिका के आयोजन में तेलुगु के कम्यूनिस्ट कवि वरवर राव ने कार्ड छपने के बाद आयोजन में जाने से केवल इसलिए मना कर दिया क्यों कि वहाँ मंच पर राष्ट्रवादी चिन्तक गोविन्दाचार्य जी उपस्थित रहने वाले थे। ये लोग हत्यारे, बलात्कारी नक्सलवादी और माओवादियों के साथ बैठकर भोजन कर सकते हैं किन्तु राष्ट्रवादियों के साथ मंच साझा नहीं कर सकते क्यों?

शिवदान सिंह चौहान जो स्वयं प्रगतिशील लेखक संघ के महत्त्वपूर्ण सदस्य रहे, के मत से 'प्रगतिवाद साहित्य की धारा नहीं है, वह साहित्य का मार्क्सवादी दृष्टिकोण है।' शिवदान जी ने इस बात को भी उद्धृत किया है कि 'रूसी क्रांति के अवसर पर यह नारा लगाया गया कि साहित्य 'वर्ग-युद्ध' का एक हथियार है।' क्या भारत में वर्ग-युद्ध के लिए ही प्रगतिवादी साहित्य रचा जा रहा है? प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के 10 वर्ष बाद देश में सबसे बड़े हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए, क्या इन दंगों का मानस बनाने में साम्यवादियों की भी कोई भूमिका थी। इस पर गहरे विचार की आवश्यकता है। अभी सीएए कानून के विरोध में हुए दिल्ली दंगों में तथा भीमा कोरेगाँव की घटना में कई बुद्धिजीवी, साहित्यिक

कम्युनिस्टों पर दंगा भड़काने के आरोप लगे हैं इसलिए शिवदान जी की 'वर्ग-संघर्ष' कराने की बात सत्य प्रतीत होती है। सन्देह होना इसलिए भी स्वाभाविक है क्योंकि जब भी देश में कोई घटना जैसे किसान आन्दोलन, शाहीन बाग़ आदि होते हैं तो अचानक, एक साथ, एक जैसे लेख, सम्पादकीय, लघुकथा और पुस्तकें प्रकाशित होने लगती हैं। वे सब उसी घटना को लक्ष्य करके जन मानस को साम्यवादी दिशा में मोड़ने और वर्ग-संघर्ष के लिए उकसाने का प्रयास करती-सी जान पड़ती हैं। क्या प्रगतिवादी अभी भी वर्ग-संघर्ष के अवसरों को ढूँढ़ने में लगे रहते हैं? आप भले ही इसे आरोप कह कर बच निकलें किन्तु ऐसा होता तो है।

कम्युनिस्ट साहित्यिकों को भारतीय संस्कृति और परिवार व्यवस्था बड़ी खटकती है। विभिन्न माध्यमों से सामूहिक परिवार को तोड़ने वाले संवाद मस्तिष्क में बिठाए जा रहे हैं। स्त्री समानता के नाम पर परिवार तोड़ने वाले नारे, गीत, कविताएँ, कहानियाँ रची जा रही हैं। वर्जनाओं को अधिकार और अवसर के रूप में मान्यता दिलाना ही प्रगतिवाद हो गया है। कोई आधी रात की आजादी माँगता दीखता है तो कोई समलैंगिकता के अधिकार के लिए संघर्ष कर रहा है। यदि लेखक प्रगतिवादी है तो उसके अश्लील, अमुद्रणीय संवाद भी साहित्य मानकर पुरस्कृत कर दिए जाते हैं। धूमिल को भाषा का भदेष कवि कह देने से बात समाप्त नहीं हो जाती। उनके द्वारा साहित्य का विकृतिकरण तो अक्षम्य ही रहेगा ना। उनके 'दाएँ हाथ और बाएँ हाथ' वाली गाली तो गाली ही रहेगी। आप अपने गुट का होने के नाते भले ही उसे कविता कह लें।

तथाकथित प्रगतिवादियों ने तुलसीदास जी को सामंतवाद का पोषक सिद्ध करने में ऐड़ी-चोटी का जोर लगा दिया। उनकी विचारधारा को प्रगति विरोधी बता कर देश के कई विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में तुलसीदास जी को सीमित या विलोपित कर दिया। गोस्वामी तुलसीदास जी पर एक आरोप और लगाया गया कि उनके विचारों से हिन्दू-मुस्लिम साझा संस्कृति (गंगा-जमुनी तहज़ीब) को कोई लाभ नहीं हुआ। क्या इस बात में अब भी कोई संदेह है कि प्रगतिवादियों ने पहले भारतीय संस्कृति के ऊपर हिन्दू-मुस्लिम साझा संस्कृति को अध्यारोपित करने का प्रयास किया, फिर मुस्लिम संस्कृति को हिन्दुओं से पृथक बता कर एक अलग इस्लामिक देश बना लिया। क्या वे पुन: वही बात दोहराना चाहते हैं?

प्रश्न तो यह भी है कि जो साहित्यकार तुलसीदास जी के साहित्य में हिन्दू-मुस्लिम साझा संस्कृति ढूँढ़ते फिरते थे उन्होंने आइडिया ऑफ़ पाकिस्तान देने वाले, मुस्लिम लीग के प्रेरणा स्रोत अल्लामा इकबाल के साहित्य में हिन्दू प्रेम या तथाकथित गंगा-जमुनी तहजीब ढूँढ़ने का प्रयास क्यों नहीं किया। अल्लामा इक़बाल ने 1904 में जो तराना-ए-हिंद लिखा है उस पर अज्ञेय जी ने अपने आकाशवाणी वाले साक्षात्कार में बड़ा रहस्योद्घाटन किया है- 'यह विचार करें 'सारे जहाँ से अच्छा, हिन्दोस्तां हमारा' में भी जिस हिंदोस्तान की कल्पना है, उसमें हिन्दू हिंदुस्तान के लिए कोई गुंजाइश नहीं रखी गई है। वो वह हिंदुस्तान है जिसके मुसलमान शासक थे, मुग़ल साम्राज्य ही हिंदुस्तान था ऐसी कल्पना उसमें है।' अज्ञेय जी ने इन पंक्तियों-

'सच कह दूँ ए बिरहमन गर तू बुरा न माने,/तेरे सनमकदे के बुत हो गए पुराने'

को अनदेखा किये जाने के राजनीतिक षड्यंत्र की ओर भी इंगित किया है।

वे कहते हैं यह किसी हिन्दू को स्वीकार नहीं होता किन्तु यह बात छोड़ दी जाती है। कई कट्टरपंथी

और कम्युनिस्ट वंदेमातरम् गाने का विरोध करते हैं किन्तु इस तथाकथित कौमी तराने पर लट्टू हुए जाते हैं क्यों? विडंबना की बात तो यह है कि अल्लामा इक़बाल हिन्दुओं के विरुद्ध बातें लिख कर भी संतुष्ट नहीं हुए, तब 1910 उन्होंने वह मिल्ली तराना लिखा जिसके कारण अल्लामा के भीतर की कट्टरता बाहर निकल कर आ गई –

चीन ओ अरब हमारा, हिन्दोसताँ हमारा
मुस्लिम हैं हम, वतन है सारा जहाँ हमारा
तौहीद की अमानत, सीनों में है हमारे
आसाँ नहीं मिटाना, नाम ओ निशाँ हमारा
दुनिया के बुतकदों में, पहले वह घर ख़ुदा का
हम इस के पासबाँ हैं, वो पासबाँ हमारा ....।

इसकी एक-एक पंक्ति और शब्द में विष वमन नहीं है तो और क्या है? यदि साहित्य के माध्यम से मुसलमानों के अस्तित्व, प्रभुत्व और साम्राज्य की लड़ाई लड़ी जाए तो फिर वह साहित्य कहाँ रह जाता है। साम्यवादियों के इस्लामिक राष्ट्रवाद को प्रगतिवादी साहित्यकारों ने भाईचारे के भ्रम के नाम पर पर्याप्त मान्यता दी। वर्तमान में फैज अहमद फैज की एक नज्म को कम्युनिस्ट लोग ख़ूब गाते हुए सुने जाते हैं –

हम देखेंगे
लाज़िम है कि हम भी देखेंगे/वो दिन कि जिसका वादा है
जो लोह-ए-अज़ में लिखा है/जब अर्ज-ए-ख़ुदा के काबे से
सब बुत उठवाए जाएँगे/हम अहल-ए-सफ़ा, मरदूद-ए-हरम
मसनद पे बिठाए जाएँगे/सब ताज उछाले जाएँगे
सब तख्त गिराए जाएँगे/बस नाम रहेगा अल्लाह का...

इसमें भी मंदिरों को तोड़ने की कामना के साथ-साथ 'बस नाम रहेगा अल्लाह का' ऐसी इच्छा व्यक्त की गई है। मूर्तियों को तोड़ना और काफिरों को सत्ता से च्युत कर इस्लाम का शासन स्थापित करना साम्यवाद है और भगवान राम का नाम लेना भी सांप्रदायिक, यह कितनी भयानक बात है। तुलसीदास जी के साहित्य में दोष ढूँढ़ने वाले लोग ऐसी घोर हिंसक और इस्लामिक कट्टरता बढ़ाने वाली रचनाओं को प्रगतिवादी एवं भाईचारा बढ़ाने वाली बताते हैं। तुलसीदास जी मस्जिद में सो जाएँ तब भी साझी संस्कृति के दुराग्रही पसीजने को तैयार नहीं। गोस्वामी जी माँग कर खाएँ, किसी की जाति-धर्म न देखें न कोई कठोर टिप्पणी करें फिर भी अप्रगतिवादी हैं –

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूतु कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सों, बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ।
तुलसी सरनाम गुलामु है राम को, जाको, रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि कै खैबो, मसीत को सोईबो, लैबो को, एकु न दैबे को दोऊ॥

जाति-पाँति, भेद-भाव से ऊपर उठकर मानव कल्याण की कामना में प्रवृत्त संतों के साहित्य पर आरोप लगाने वालों को डॉ. रामविलास शर्मा जी ने बहुत ही सटीक उत्तर दिया है। रामविलास जी अपनी

पुस्तक 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ' में तुलसी साहित्य के सामंत विरोधी मूल्य शीर्षक में सिद्ध कर देते हैं कि तुलसीदास जी के साहित्य में वर्ण और जाति व्यवस्था को चुनौती देने वाले स्वर भी उपस्थित हैं। वे कहते हैं कि तुलसी के प्रभु ने जाति हीन मनुष्यों को अपनाया-

जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि।
महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि॥

तुलसीदास जी की भक्ति जाति, वर्ण, धर्म के कारण किसी का वहिष्कार नहीं करती। रामविलास जी ने भारतीय संस्कृति के गौरव को स्वीकार करते हुए इस बात को सप्रमाण बताया है कि वैदिक ऋषि भी श्रम करते थे। अर्थात् हमारे प्राचीन साहित्य में भी श्रम के मूल्य को स्थापित किया गया है। भारतीय सहित्य में श्रम की प्रशंसा तब से है जब प्रगतिवाद के पिता लेनिन के बौद्धिक प्रपितामह का जन्म भी नहीं हुआ था। संभवत: यही कारण है कि अब कम्युनिस्ट लेखक रामविलास जी पर कुपित होने लगे हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात् नेहरू जी को साम्यवादी विचारों से जोड़ने के लिए बड़ी योजना बानाई गई। सीताराम गोयल की पुस्तक 'जेनिसिस एंड ग्रोथ ऑफ़ नेहरूइज्म' में लिखा गया है कि 'कॉमिन्टर्न नेटवर्क' में पंडित नेहरू 1924-25 में मानवेन्द्र नाथ राय की पहली पत्नी एवेलिन राय के मार्फ़त शामिल हुए थे। ऐसे अनेक उद्धरणों के साथ 'कहानी कम्युनिस्टों की' नामक पुस्तक में नेहरू जी कि प्रकार कम्युनिस्टों से जुड़े या उन्हें जोड़ा गया और उसका भारत की राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ा आदि बातों का बृहद वर्णन किया गया है। इसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। नेहरू जी ने स्वयं कई पुस्तकें लिखीं, कई पुस्तकों की भूमिकाएँ उनके द्वारा लिखी गईं। देखते-ही-देखते गाँधी साहित्य एवं गाँधीवाद के समानांतर नेहरू साहित्य और नेहरूवाद खड़ा हो गया। जो गाँधी जी के मूल विचारों से दूर साम्यवाद की छाँव और प्रेरणा से पल्लवित हुआ। कालांतर में कांग्रेस शासन में साहित्यिक/वैचारिक अनुष्ठान नेहरूवाद के नाम पर कम्युनिस्टों के अधीन आ गए। कांग्रेस के मूल विचार जो कि राष्ट्रवादी, धार्मिक एवं सांस्कृतिक थे अब हिंदूवादी कहे जाने लगे।

प्रगतिवादियों ने वीर सावरकर जैसे महान क्रांतिकारियों के विपुल साहित्य को सांप्रदायिक कहकर शासन से बहिष्कृत करा दिया। गुरु गोविन्द सिंह जी के साहित्य की तो चर्चा ही नहीं की गई। विद्यालयों और महाविद्यालयों में साम्यवादी कवि, लेखकों, इतिहासकारों और उनकी कृतियों को पाठ्यक्रमों में विशेष और सर्वाधिक स्थान दिया गया। हिन्दी में स्नातकोत्तर स्तर पर एवं शोध हेतु भी विचारधारा विशेष से सम्बंधित साहित्यकारों को ही वरीयता दी गई।

प्रश्न यह भी है कि हम साहित्य सृजन क्यों करना चाहते हैं। अपने आनंद के लिए, पुरस्कार पाने के लिए, किसी के मन की पीड़ा को हरने या अपने मन की पीड़ा व्यक्त करने के लिए, समाज का पथ प्रदर्शन करने के लिए या समाज में वर्ग-संघर्ष को बढ़ावा देने के लिए? पुरस्कार वापिसी अभियान से साहित्यकारों के ऐसे समूह सामने आ रहे हैं जिन्हें अब तब केवल साहित्यकार ही माना जाता था जबकि वे दल विशेष की कृपा से अपने एजेंडे पर काम कर रहे थे। अब पता चल रहा है कि राजनीतिक स्थितियाँ बदलते ही कुछ तथाकथित साहित्यकार विपक्ष की भूमिका में क्यों आ गए हैं।

सम्पर्क : *ग्वालियर (म.प्र.)*
मो. 9425456639

डॉ. शारदा मेहता

प्राचीन और आधुनिक गुरुकुलों में शिक्षण व्यवस्था

भारत में अंग्रेजी शिक्षा पद्धति के पूर्व परम्परागत शिक्षा पद्धति का प्रचलन था। देश के महापुरुष जिन्होंने देश ही नहीं वरन् विदेश में भी अपनी बुद्धि कौशल का परचम लहराया था, उन्होंने हमारी प्राचीन शिक्षा पद्धति से ही शिक्षा ग्रहण की थी।

यदि हम वैदिक युगीन शिक्षा की ओर दृष्टिपात करें तो सम्पूर्ण परिदृश्य ही भिन्न परिलक्षित होता है। मानव का जीवन आश्रमों में विभाजित था– 1. ब्रह्मचर्य, 2 गृहस्थ, 3. संन्यास, 4. वानप्रस्थ। ब्रह्मचर्य आश्रम अध्ययन के लिए निर्धारित था। शिक्षा प्राप्त करने के लिए आज के समान विद्यालय नहीं होते थे। गुरुकुल शिक्षा पद्धति का ही प्रचलन था। समाज के चार अंग थे– 1. ब्राह्मण, 2. क्षत्रिय, 3. वैश्य, 4. शूद्र। गुरुकुल शिक्षा पद्धति में इनमें से किसी अंग के लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं था। सभी वर्ण के बालक गुरुकुल में प्रवेश ले सकते थे। किसी के लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं था। गुरुकुल में ऊँच-नीच, जाति-पाँति का नामोनिशान नहीं था। आधुनिक विद्यालयों के समान गुरुकुल में किसी भी प्रकार का शुल्क निर्धारित नहीं था। सम्पूर्ण शिक्षा अवधि नि:शुल्क थी। शिक्षा पूर्ण होने पर विद्यार्थीगण अपने सामर्थ्यानुसार आश्रम को दान स्वरूप भेंट देते थे। गौदान, भूमिदान, अनुदान आदि के रूप भेंट होती थी। कुछ गुरुकुल भारत ही नहीं अपितु विदेशों में ख्याति अर्जित कर चुके थे। विदेशों से शिक्षार्थी यहाँ शिक्षा ग्रहण करने आते थे और अपने देश में भारत का यशोगान करते थे। इस लेख के माध्यम से मैं अपने पाठकों का भारत के कुछ प्रसिद्ध गुरुकुलों की ओर ध्यानाकर्षण करना चाहूँगी–

1. महर्षि वेदव्यास का गुरुकुल : वेदव्यास जी द्वापर युग के अंत में हुए थे। इनका पूरा नाम कृष्णद्वैपायन है। इन्हें व्यास या वेदव्यास भी कहा जाता है। गुरु पूर्णिमा के विशेष दिन इनकी पूजा की जाती है। कहा जाता है कि महाभारत ग्रंथ के साथ ही इन्होंने शताधिक ग्रंथों की रचना की तथा कुछ पुराण भी इनके द्वारा रचित माने जाते हैं। इनके कुछ शिष्यों ने आश्रम स्थापित कर वैदिक शिक्षा देने का कार्य किया।

2. शौनक ऋषि का गुरुकुल : इनके गुरुकुल में दस हजार से अधिक शिष्य शिक्षा प्राप्त करते थे। इनके पिता का नाम शुनक था। इनके आश्रम में गुरुकुल का सर्वोच्च पद कुलपति होता था। आधुनिक काल में सम्पूर्ण विश्व में विश्वविद्यालय के प्रमुख को कुलपति या वाइस चांसलर कहा जाता है। आधुनिक समय की शिक्षण पद्धति तो सर्वथा भिन्न है परन्तु कुलपति शब्द शिक्षाविदों ने यहीं से ग्रहण किया है।

3. अत्रि गुरुकुल : विद्वानों की मान्यता है कि अत्रि वंश के कारण ही पारसी धर्म का सूत्रपात हुआ। पारसी धर्मावलम्बी अग्निपूजक हैं। कहा जाता है कि अत्रि लोग सिन्धुपार गए थे। वे ईरान (प्राचीन नाम पारस) गए और यज्ञ का प्रचार-प्रसार किया। कृषि कार्य को अत्रि ऋषि ने विकसित करने में योगदान दिया। ब्रह्मा पुत्र सोम के पिता अत्रि ऋषि थे। वे कर्दम व देवहूति की पुत्री अनुसूया के पति थे। इनका आश्रम पावन चित्रकूट में था।

4. धौम्य ऋषि का गुरुकुल : धौम्य ऋषि के आश्रम के प्रमुख आज्ञाकारी शिष्यगण आरुणि और उपमन्यु की गुरुभक्ति आज भी विश्वप्रसिद्ध है। इस आश्रम में शिष्यों को तप और योग साधना में पारंगत किया जाता था। तितिक्षा और संयम की मूलभूत शिक्षा यहाँ का प्रमुख ध्येय रहा है।

5. भारद्वाज ऋषि का गुरुकुल : यह आश्रम प्रयाग में था। भारद्वाज ऋषि ने महर्षि भृगु से धर्मशास्त्र की शिक्षा ग्रहण की थी। उन्होंने 'भरद्वाज स्मृति' की रचना की थी। भारद्वाज ऋषि वैदिक ऋषियों में सर्वोच्च स्थान पर हैं। ये विमान शास्त्र के प्रणेता थे। इनका 'यन्त्र सर्वस्व' बृहद् ग्रंथ प्रसिद्ध है। इस ग्रंथ में युद्ध में प्रयुक्त होने वाले विमानों के निर्माण विषयक सूत्र समीकरण उपलब्ध हैं। ऋषि भारद्वाज अर्थशास्त्र, धनुर्वेद, व्याकरण, धर्मशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, आयुर्वेद, भौतिक विज्ञान आदि कई विषयों में असाधारण प्रतिभा के धनी थे।

6. ब्रह्मर्षि वसिष्ठ का गुरुकुल : यह गुरुकुल विश्व प्रसिद्ध था। दशरथ नंदन राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के ये गुरु थे। वसिष्ठ के कथनानुसार ही दशरथ जी ने अपने चारों पुत्रों को विश्वामित्र के आश्रम में भेजा था।

7. विश्वामित्र का गुरुकुल : यह आश्रम बकसर (बिहार) में स्थित था। यहाँ रहकर राम-लक्ष्मण ने धनुर्विद्या प्राप्त की थी। यहाँ शिक्षा प्राप्त करते हुए उन्होंने कई राक्षसों को मार गिराया।

8. महर्षि वाल्मीकि का गुरुकुल : महर्षि वाल्मीकि संस्कृत भाषा के आदि कवि माने जाते हैं। इन्होंने ही संस्कृत भाषा में 'श्री वाल्मीकि रामायण' की रचना की है। सीता जी ने गर्भावस्था में इसी आश्रम में निवास किया था। यहीं पर लव तथा कुश का जन्म हुआ था। वाल्मीकि ऋषि श्रीराम के समकालीन थे।

9. गौतम ऋषि का गुरुकुल : विद्वानों की मान्यता है कि गौतम ऋषि के आश्रम में श्रीराम गए थे। वहाँ श्रीराम ने पाषाण रूप में स्थित अहल्या को अपने चरणों की रज से शापमुक्त किया था। उसने मानवी रूप धारण कर लिया था। गौतम ऋषि धनुर्वेदाचार्य भी थे और स्मृतिकार भी।

10. परशुराम ऋषि का गुरुकुल : यह नर्मदा के तट पर स्थित था। परशुराम जी, जनक जी तथा दशरथ जी को बहुत सम्मान देते थे। कालान्तर में वे दक्षिण प्रदेश में चले गए और एक नए आश्रम की स्थापना की एवं शस्त्र तथा शास्त्र की शिक्षा का प्रसार किया।

11. कण्व ऋषि का गुरुकुल : इनके आश्रम में नैयायिक रहा करते थे। वे न्याय सिद्धान्त के ज्ञाता थे। इन्हीं के आश्रम में मेनका पुत्री शकुन्तला रहती थी। दुष्यन्त तथा शकुन्तला का पुत्र इसी आश्रम में सिंह शावक से खेलता था। यही भरत प्रसिद्ध सम्राट हुए। इन्हीं के नाम से हमारा देश 'भारतवर्ष' कहलाया।

12. कपिल मुनि का गुरुकुल : महाभारत के अनुसार कपिल मुनि सांख्य के वक्ता कहे गए हैं। इन्होंने अपनी माता को ज्ञान दिया। उसे ही सांख्य दर्शन कहते हैं। ऐसा कहा जाता है वनवास के समय राम,

लक्ष्मण और सीता कपिल मुनि के आश्रम में पहुँच गए। वे तीनों थके हुए थे। उन्हें पानी की तलाश थी। कपिल मुनि के आश्रम में ही उनकी तृषा शान्त हुई।

13. वामदेव का गुरुकुल : वामदेव को विश्व में संगीत के प्रणेता के रूप में स्वीकारा गया है। भरत मुनि का नाट्य शास्त्र सामगान से प्रेरणा लेकर ही निर्मित है। इस अति प्राचीन सामवेद में संगीत तथा वाद्ययंत्रों की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

14. गुरु द्रोण का गुरुकुल : द्रोणाचार्य भारद्वाज मुनि के पुत्र थे। द्रोणाचार्य के हजारों शिष्य थे। अर्जुन गुरुद्रोण के ही शिष्य थे। पांडवों के भाई अर्जुन ने गुरु द्रोण से ही धनुर्विद्या में श्रेष्ठता प्राप्त की थी। एकलव्य ने द्रोणाचार्य की मिट्टी की एक मूर्ति बनाकर, उसे अपना गुरु मान कर धनुर्विद्या सीखी थी। इनके गुरुकुल में धनुर्विद्या, अस्त्र-शस्त्र निर्माण कला, चिकित्सा, ज्योतिष, वैदिक ज्ञान आदि महत्त्वपूर्ण विषयों की शिक्षा दी जाती थी। इतिहास में इस गुरुकुल को महत्त्वपूर्ण बतलाया गया है।

15. कश्यप ऋषि का गुरुकुल : कश्यप ऋषि का गुरुकुल हिमालय की तराई में स्थित था। सर्प दंश निवारण विद्या के जनक कश्यप ऋषि को माना गया है। ऋषि आयुर्वेद में निष्णात माने गए हैं। इनका गुरुकुल रोग-पीड़ा निवारण केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध था। यहाँ तंत्र-मंत्र के द्वारा विषैले जीव-जन्तु को वश में किया जाता था। आधुनिक समय में भी वनक्षेत्रों तथा हिमालय की तराई में रहने वाले तंत्र-मंत्र वेत्ता के वंशज जहरीले साँप बिच्छु को अपनी मंत्र शक्ति के द्वारा वश में कर लेते हैं। यह सब कश्यप ऋषि की देन है।

16. सांदीपनि ऋषि का गुरुकुल : यह गुरुकुल जगत् प्रसिद्ध रहा है। कृष्ण, बलराम तथा सुदामा ने इसी आश्रम में शिक्षा ग्रहण की थी। यहाँ का शिक्षण उच्च कोटि का था। यह आश्रम मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध शहर उज्जैन में आज भी अपने अवशेषों के साथ स्थित है। उज्जैन का प्रसिद्ध मौनी बाबा आश्रम समीप ही स्थित है, जहाँ आश्रम परम्परानुसार बालकों को शिक्षण दिया जाता है। सांदीपनि आश्रम में राजा से लेकर रंक तक एक समान शिक्षा प्राप्त करते थे। शिष्यगण आश्रम कार्य के लिए जंगल से लकड़ियाँ लाते थे। उज्जैन के समीप स्थित ग्राम नारायणा में आज भी कृष्ण-सुदामा द्वारा एकत्रित लकड़ियाँ रखी हुई हैं, जो अब वृक्ष में परिवर्तित हो गई हैं।

17. महर्षि अगस्त्य का गुरुकुल : महर्षि वसिष्ठ के बड़े भाई महर्षि अगस्त्य थे। दक्षिण भारत में इन्हें आद्य व्याकरणाचार्य के सम्मान से विभूषित किया गया है। 'अगस्त्य व्याकरण' इनके द्वारा रचित है और इसे पाणिनी की अष्टाध्यायी के समान तमिल व्याकरणाचार्य स्वीकारते हैं। रुद्र प्रयाग जिले में अगस्त्य मुनि नामक नगर आज भी है। जावा, सुमात्रा आदि देशों में महर्षि अगस्त्य का पूजन किया जाता है। महाराष्ट्र में कई स्थानों, उत्तराखण्ड तथा तमिलनाडु में इनके कई आश्रम थे। महर्षि अगस्त्य को मार्शल आर्ट का आदि गुरु माना जाता है। इन्होंने अपनी इस कला को कई शिष्यों को सिखाया। दक्षिण भारतीय चिकित्सा पद्धति के ये 'सिद्ध वैद्यम' कहे जाते हैं।

हमारे सभी गुरुकुल शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। अध्ययन, चिन्तन तथा मनन के लिए कोलाहल से दूर सुरम्य शान्त वातावरण की आवश्यकता होती थी। इसीलिए प्राचीन काल में जितने भी गुरुकुल होते थे वे सुन्दर प्राकृतिक वातावरण में बागबगीचे तथा वनों के मध्य होते थे। इससे गुरु और शिष्यों को अध्ययन

अध्यापन में शान्त वातावरण प्राप्त होता था। जीवन निर्वाह की वस्तुएँ तथा भिक्षाटन के लिए ब्रह्मचारीगणों को घूमने की पर्याप्त सुविधा थी। कुल बान्धवों से भिक्षा ग्रहण करना पूर्णतया वर्जित था। तत्कालीन राजा विद्वान पंडितों को अपने राजदरबार में सम्मेलन में निमन्त्रित करते थे। राजा दान में भूमि, गौधन आदि देते थे। जो विद्वान नगरों के आसपास बस जाते थे, वहाँ शिक्षा के क्षेत्र बन जाते थे। काशी, नासिक, पाटलिपुत्र, तक्षशिला, मिथिला आदि कई नगर विश्वप्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र बन गए थे। कई प्रसिद्ध मठ शिक्षा के केन्द्र थे। सम्राट अशोक ने बौद्ध विहारों की स्थापना की थी, जहाँ अनुशासनबद्ध छात्र आचार्यों से शिक्षा ग्रहण करते थे। विश्वप्रसिद्ध नालंदा और विक्रमशिला विश्वविद्यालय में कई छात्र अध्ययनरत थे।

आधुनिक समय में हमारे यहाँ के प्रयोगधर्मी शिक्षाविद् गुरुकुल शिक्षा पद्धति के महत्व को स्वीकार कर उसे मूर्त रूप देने के लिए प्रयत्नशील हैं। गुजरात के उत्तमभाई ने साबरमती गुरुकुलम् की स्थापना की है। यह स्थान बौद्धिक पुनर्जागरण का केन्द्र बन चुका है। यहाँ शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय प्राचीन जीवनशैली को आत्मसात किया जा चुका है।

इंदौर जैसे प्रगतिशील नगर में भी आई.आई.टी. गुरुकुलम् की स्थापना की जा चुकी है। बारहवीं उत्तीर्ण करने के बाद जो छात्र यहाँ प्रवेश लेता है वह यहाँ के सुरम्य शैक्षणिक वातावरण से एकदम संतुष्ट दिखाई देता है। वहाँ टेलीविजन आदि की सुविधा न होने पर प्रथम तो उन्हें असहज लगता है परन्तु अल्प समयोपरान्त वातावरण से अभ्यस्त होने पर उसे अध्ययन में आनन्द आने लगता है।

अहमदाबाद के साबरमती गुरुकुलम् को जो भी देखने जाता है उनके मन में दिव्य स्पन्दन का अनुभव होता है। आई.आई.टी. दिल्ली के छात्रों ने वहाँ जाकर शैक्षणिक गतिविधियों को समझा तो वे अभिभूत हो गए। उन्हें अनुभव हुआ कि हमारी बाल्यावस्था का ज्ञान अधूरा रह गया। यहाँ पर सीखने जैसा बहुत कुछ है जिससे हम वंचित हैं। यदि हम भारतीय संस्कृति का मनमोहक दृश्य देखना चाहते हैं तो भारत के प्रत्येक मुख्यालय में एक गुरुकुलम् की स्थापना होनी चाहिए जिससे हमारी गौरवपूर्ण संस्कृति की रक्षा हो सके और भारतवर्ष पुन: विश्वगुरु के पद पर आसीन हो सके।

सम्पर्क : *उज्जैन (म.प्र.)*
मो. 9406660280

अखिलेश आर्येन्दु

मूल्यपरक कविता के संवाहक कर्ण सिंह 'कर्ण'

युगधर्मी और अमर काव्य रचना वह है, जो मानवता, समाज, राष्ट्र और संस्कृति की संवाहक हो। जिसमें वे सभी मानव मूल्य समाहित हों, जो मनुष्य को मानवता की ओर प्रेरित करने की क्षमता रखते हों। स्पष्ट है द्विवेदी युगीन कविता उन मानवीय मूल्यों को समावेशित करती चलती दिखती है जिनसे साहित्य, समाज, संस्कृति, राष्ट्र और दर्शन का संवर्धन होता है। द्विवेदी युग के ऐसे युगीन साहित्य का सृजन करने वालों में कर्ण सिंह 'कर्ण' की कविताएँ अपनी अनेक साहित्यिक विशेषताओं के कारण हिंदी साहित्य में अलग स्थान रखती हैं। हिन्दी साहित्य के जाज्वल्यमान नक्षत्रों में कवि 'कर्ण' का नाम आदर और सम्मान के साथ लिया जाना चाहिए। कवि कर्ण सिंह 'कर्ण' ऐसे युगधर्मी साहित्यकार थे जिन्होंने अपने आलोक से हिन्दी जगत् को ज्योतित कर दिया। उन्होंने अपने त्याग, तपस्या, राष्ट्रभक्ति, राष्ट्र-चेतना, राष्ट्र-उन्नयन और राष्ट्रहित के कार्यों से एक भिन्न पहचान बनाई। समाज, संस्कृति, धर्म, अध्यात्म और स्वतन्त्रता जैसे अनेक क्षेत्रों को अपनी लेखनी में समेटा और हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। मानव मूल्यों को अपनी प्रखर लेखनी में समाहित कर समाज, संस्कृति, धर्म और राष्ट्र-चेतना को नया स्वर दिया।

शब्द ब्रह्म है। उस शब्द रूपी ब्रह्म का अखण्ड उपासक वही होता है जिनमें सृजन शक्ति और सामर्थ्य तो होती ही है, युग, समाज और संस्कृति की धारा को मोड़ने की चाह भी होती है। कवि 'कर्ण' ऐसे ही युगधर्मी कवि थे जिनकी कविताओं में युग की धारा को मोड़ने की अतीव छटपटाहट दिखाई देती है। हिंदी साहित्य के पुरोधा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हिंदी खड़ी भाषा के संस्कर्ता माने जाते हैं। उन्हीं संस्कर्ता रचनाकारों में कवि 'कर्ण' भी एक थे। कविता की प्रत्येक धारा पर उनकी गहरी पकड़ थी। उनकी कविताओं में प्रयुक्त भाषा-शैली सरस, सहज व बोधगम्य है।

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में जिन महान् रचनाकारों की रचनाएँ अक्सर प्रकाशित होती थीं, उनमें कवि 'कर्ण' की भी कविताएँ हुआ करती थीं। सरस्वती पत्रिका, विशाल भारत और प्रताप में उन दिनों कविताएँ प्रकाशित होना किसी कवि के लिए अत्यंत सम्मान की बात मानी जाती थी। जिस काल में कवि 'कर्ण' हिंदी साहित्य को अपने सृजन से समृद्ध कर रहे थे, वह हिन्दी साहित्य में 'द्विवेदी युग' के नाम से अभिहित किया जाता है। ऐसे काल में जब राष्ट्र एवं समाज में चहुँओर भटकाव, अंधविश्वास, अविश्वास, पाखण्ड, कुरीतियों, कुप्रथाओं का बोलबाला और जीवन मूल्यों का क्षरण हो

रहा हो, एक निर्भीक योद्धा की तरह कवि 'कर्ण' कलम लेकर गरजते हुए तत्कालीन शासन को ललकारने का सत्साहस करते हैं। उनका यह सत्साहस युग-धर्म निभाने का अप्रतिम प्रयास कहा जा सकता है। सत्य और शुभ को पगतल रौंदने वाली ब्रिटिश सत्ता के हिंसक, अत्याचारपूर्ण, शोषणपरक और अन्याय-युक्त कृत्यों, कानूनों और व्यवहारों को देखकर युग-द्रष्टा कवि के चक्षु और चेतना भला कैसे झंकृत न होते। परिवार की जिम्मेदारी निभाने के साथ राष्ट्र-समाज की जिम्मेदारी निभाने का कार्य, कवि या साहित्यकार ही कर सकता है। और कवि 'कर्ण' ने आजीवन इसे अत्यन्त धैर्य और निर्भीकता के साथ निभाया।

समय की शिला पर न मिटने वाला सुकृत्य, समग्र मानवता का पोषण और संरक्षण करता है। कवि इन दोनों सुकृत्यों को एक साथ निभाता है। लेखनी में अविकल प्रखरता और सतर्कता उसे इतिहास के पन्नों में चिरायु बना देती है। काव्य साहित्य की ऐसी जीवंत और मार्गदर्शक विधा है जिसमें युग और राष्ट्र की धारा का युग-धर्म प्रवाहित होता है। मनुष्य जाति की जो बौद्धिक स्मृति बची है, 'काव्य' के कारण बची है। कवि 'कर्ण' की कविताओं में तत्कालीन इतिहास की जीवंतता के दिव्य चित्र उद्वेलित द्रष्टव्य होते हैं। उन्होंने कर्णामृत, यमुना लहरी, सुमन माल, कर्णोद्गार-कलिका, जे.पी. हिंदी कोश, अनुराग-वाटिका पुस्तकों का सृजन किया और सन् 1907 से 1937 के काल में 'सरस्वती पत्रिका', 'विशाल भारत,' 'प्रताप', 'सैनिक', 'बारह सैनी', 'माहेश्वरी' जैसी ऐतिहासिक पत्रिकाओं में राष्ट्र-चेतना, राष्ट्र-वंदना, राष्ट्र-निर्माण, राष्ट्र-शक्ति, राष्ट्र-स्वतंत्र्य, समाज सुधार, आदर्श समाज निर्माण, वैदिक ज्ञान संधान, मानव मूल्य, जीवन मूल्य, संस्कृति संचार और साहित्य मूल्यों पर आधारित उनकी कविताओं का प्रकाशन हुआ।

'कर्णामृत' प्रथम भाग में प्रकाशित उनकी कविताएँ धर्म, अध्यात्म, मूल्य (सद्गुण) राष्ट्र-चेतना एवं राष्ट्र-स्वतंत्र्य और समाज सुधार पर आधारित हैं। सोरठा, पद, भजन, दोहा, मिताक्षराछंद, राजगीत, विहाग, सुरपादप छंद, लावनी छंद, आसावरी छंदों और विभिन्न प्रकार के अलंकारों और बिम्बों का प्रयोग दर्शनीय हैं। कविताओं में प्रेरणा, उपदेश, ज्ञान, प्रार्थना और आदर्श जेसे अनेक मूल्यों की धाराएँ अजस्त्र रूप में प्रवाहित हैं।

उन्नीसवीं सदी नवजागरण की सदी थी। यह वह काल था जब भारत के बाहर विश्व के कई देशों में समाज, संस्कृति, धर्म, अध्यात्म और जीवन दर्शन के क्षेत्र में नवजागरण का सूत्रपात हो रहा था। भारत में समाज सुधार, राष्ट्र-चेतना, धर्म सुधार और जन जागृति के अनेक आन्दोलन चल रहे थे, इनमें आर्यसमाज, ब्रह्म समाज एवं प्रार्थना समाज प्रमुख थे। इन आन्दोलनों का प्रभाव तत्कालीन साहित्यकारों, पत्रकारों, इतिहासकारों और देश को स्वतंत्र कराने वाले देशभक्तों पर पड़ना स्वाभाविक था। फिर कवि 'कर्ण' भला उक्त प्रभावों से कैसे अछूते रह सकते थे। कवि 'कर्ण' की कविताओं में इन आंदोलनों का प्रत्यक्ष प्रभाव द्रष्टव्य होता है। वैदिक ज्ञान धारा और आर्यसमाज का सुधारवादी और ज्ञानवादी प्रभाव इनकी कविताओं में सर्वत्र दिखाई पड़ता है। उन्होंने अपनी कविताओं में कलात्मक और भावात्मक दोनों तरह से अपने भावों को प्रकट किया। कवि की सभी कविताओं में प्रेरणा, उपदेश, ज्ञान के साथ-साथ अंतर्मन की पावनता, विनम्रता और साधुता के भी दर्शन होते हैं।

बन्दों ईश? सदा सुख धाम।
निर्विकार, निर्लेप, निरामय, नारायण, निष्काम।।
शुद्ध, बुद्ध, सर्वज्ञ, सर्वगत आदि पुरुष अभिराम।।

अंधविश्वास, पाखण्ड, कुरीतियों, कुप्रथाओं और कुप्रवृतियों का जीवन भर विरोध करने वाले कवि 'कर्ण' अपने उच्च्च संवेदना वाले कानों से जन मानस की चित्कारों को सुना और दिव्य अंतर्चक्षुओं से प्रत्येक दिशा में देखा, और जो सुनाई-दिखाई पड़ा, उसे काव्य में पिरोया। एक ओर 'कर्ण' समाज की पतितावस्था और दुर्दिन पर व्यथित हो ईश्वर से विनती कर रहे हैं, तो दूसरी ओर समाज में छाये अंधकार और कुविद्या को भी समाप्त होते देखना चाहते थे। वेद में जिन मानव मूल्यों को ऐश्वर्य कहा गया है, उनमें विनम्रता जीवन का अनुपम आभूषण है। इस आभूषण को पहनकर कवि परमेश्वर के सम्मुख नतमस्तक है। मानव जीवन का लक्ष्य मोक्ष माना जाता है। इस मोक्ष (परम-आनंद) को पाने के लिए ऋषि-मुनि घनघोर तप करते हैं। दुख और सुख का कारण परमात्म अनुकम्पा है। कवि 'कर्ण' की विनम्र विनती सुनिए-

है तू परमानंद प्रदाता।
तुझसा कोई और हितू हमको न हरे लख आता।।
जे नर ध्यान धरे उसको तू परली पार लगाता।
उसकी आधि-व्याधि सब हरता, हित करता, अपनाता।।

अलंकारों, छंदों, समासों, रसों और बिम्बों का प्रयोग कवि 'कर्ण' की कविताओं को लालित्य ही नहीं प्रदान करते अपितु उन्हें 'सुकवि' की श्रेणी में ला खड़ा करते हैं। कविताओं का स्वाध्याय करते हुए लगता ही नहीं, गाँव-गिराँव के छोटे से परिवार का कोई साधारण कद-काठी का असाधारण 'रागनी' गाने वाला गायक है। भारतेन्दु और प्रसाद युगीन कवियों की कविताओं में मौलिकता, नवीनता और उत्तमता के वे मूल्य और आदर्श समाहित हैं जिससे व्यक्ति और समाज सुन्दर बनता है। कवि 'कर्ण' की कविताओं में लोक-परलोक दोनों का वर्णन है। कवि 'कर्ण' की कविताओं में मूल्यों का आदर्शवादी और यथार्थवादी रूप का चित्रण है। 'कर्ण' कहते हैं-

ईश हमें दो विवेकमय ज्ञान (टेक)
लोक और परलोक सुधारें, कर धर्म्मामृत पान।।
क्षण भङ्गुर तनु, धन, धरणी पर करें न हम अभिमान।
माया-बन्धन तोड़ें, रखते हुये लक्ष्य पर ध्यान।।

कवि 'कर्ण' भाग्यवादी और अंधभक्ति परम्परा के नहीं हैं। वे पुरुषार्थ, ज्ञान, विज्ञान, धर्म और अध्यात्म के तर्कवादी धारा के सृजनकर्ता और संवाहक हैं। वह देश को भाग्य-पुरुषार्थ के माध्यम से चमकते हुये देखना चाहते हैं। ईश्वर से प्रार्थना करते हैं तो जन-मानस को जागृत भी करते हैं-राष्ट्र को स्वाधीन कराने के लिए।

दयामय भारत को अपनाओ (टेक)
अब फिर इस हत भाग्य देश के सोते भाग्य जगाओ।।

अकर्मण्यता खोदो पौरुष का प्रिय पाठ पढ़ाओ।

नीचे गिरता जाय न गौरव गिरि पर इसे चढ़ाओ।

पुरुषार्थी बनने के लिए सत्साहस, अभय, सत्य, अहिंसा, न्याय और तितिक्षा का होना आवश्यक है। बिना इन मूल्यों के न तो मानव की उन्नति हो सकती है और न तो समाज-राष्ट्र की ही। जब मानव से उसके अन्दर निहित मूल्यों का पतन हो जाता है तो, वह निरा पशु या पशुता से भी नीचे गिर जाता है। पतित होना और पतित होते जाना, यह राक्षसीपन का द्योतक है। इसी प्रकार दीन-हीन होना और दृष्टिहीन होना, दोनों अत्यंत दुखदायी है। 'कर्ण' दोनों से बचने और उबरने की प्रेरणा देते हैं। इसलिए सतत् स्वस्थ चिंतन और सत्कर्म को ही जीवन का आधार बनाने की बात करते हैं।

बल दो, साहस दो, कायरता की जड़ काट गिराओ।

जैसा था यह पूर्व काल में वैसा प्रभो! बनाओ।

दयामय! भारत को अपनाओ (टेक)

कर धन-धान्य युक्त निर्धनता का दुख दूर भगाओ।

मृतप्राय न रहे जागता-जीवन इसे दिलाओ।।

दीन-हीन और निर्धन होना अभिशाप माना गया है। देश के प्रत्येक व्यक्ति को ऐश्वर्यशाली देखने की उत्कट अभिलाषा कवि का देश और समाज के प्रति समर्पण और भक्ति है ही, देश के प्रत्येक व्यक्ति में मूल्यों को उद्वेलित रूप भी देखने की उत्कट भावना भी है। भारत का प्रत्येक नागरिक सदाचारी, ब्रह्मचारी, धर्मरक्षक, वीर-व्रतधारी और कर्तव्यपरायण हो-ऐसी अभिलाषा उनके रोम-रोम में आप्लावित थी।

कब तक प्यारा भारत देश विदेशी क्रूर शासन के पगतल पदाक्रान्त होता रहेगा? प्रश्न करते हैं और उत्तर भी देते हैं-

पदाक्रान्त न रहे उच्च पद ही पाना सिखलाओ।

कर्म्म-योग सिखला कर इसकी यश: ध्वजा फहराओ।।

मानव में धन-सम्पत्ति का अभिमान होना उसका दुर्भाग्य है। लेकिन देश के प्रति देशाभिमान होना उसका सौभाग्य है, और कवि होना परम सौभाग्य है। किसी कवि ने लिखा है-मानव होना भाग्य है/ कवि होना सौभाग्य। कवि 'कर्ण' सौभाग्यशाली हैं। वे एक आदर्श मानव हैं तो एक उच्चकोटि के कवि। उनकी उच्चता उन्हें हमेशा याद रहती है। वे कवि हैं, और उनका समाज, राष्ट्र, साहित्य और मानवता के प्रति कर्तव्य क्या है-स्मरण रहता है। प्रथमोल्लास में वर्णित सोरठा छंद की ये पंक्तियाँ -

फूले भले स्वदेश! सुकवि कर्ण जागे सुदिन!।

फिर भी करे प्रवेश, यह उन्नति के मार्ग में।।

शुभ संकल्प और सकारात्मक विचार (लक्ष्य के प्रति दृढ़ता) मनुष्य को हताश-निराश नहीं होने देते। वेदों में शुभ संकल्प को भी मानव मूल्य माना गया है। कवि 'कर्ण' शुभ संकल्पवान होने के लिए कटिबद्ध हैं। उनका शुभ संकल्प 'मानवता विजयनी' होने के लिए है, तो भारत को स्वाधीन देखने के लिए भी है। उनके अन्दर साहित्य का धर्म निभाने का जितना कर्तव्यबोध है, उतना ही मानवता के प्रति

धर्म निभाने के लिए भी। क्रूर और बेलगाम राजसत्ता सभी प्रकार के मूल्यों को नष्ट कर डालती है। 'कर्ण' विदेशी क्रूर राजसत्ता का सूर्य डूबते हुए देखना चाहते हैं। यह तभी सम्भव है जब देश का प्रत्येक नागरिक देश की स्वाधीनता के प्रति अपने कर्तव्यों का देशाभिमान के साथ पालन करे। आत्मा की शक्ति सभी शक्तियों से शक्तिशाली है। देश के प्रत्येक व्यक्ति में वे आत्माभिराम की शक्ति को आलोकित होते हुये देखना चाहते हैं। उनकी आकांक्षा है-

हों कर्म्म-धर्म्म-अनुसार सभी के जग में।
हों निज कृत श्रेष्ठाचार सभी के जग में।।
हों परम पवित्र विचार सभी के जग में।
हों जीवन उच्च उदार सभी के जग में।।

समाज और राष्ट्र दोनों समाज और राष्ट्र परक मूल्यों से संचालित होते और उन्नति करते हैं। इनके उन्नति के आधार हैं- समाज ओर राष्ट्र के निष्ठावान जन। मूल्यों की कड़ियों का जुड़ना आवश्यक है। मानव मूल्यों से मानवता की कड़ी, मानव मूल्यों से समाज की कड़ी और राष्ट्र की कड़ी का हमेशा जुड़े रहना आवश्यक है। 'कर्ण' जीवन के उद्दाम भावना में निहित मूल्यों को निरंतर जीवंत और गतिमान देखना चाहते हैं। हृदय की पवित्रता और विनम्रता मानव को अहंकार से बचाती है। 'कर्ण' इसके प्रति सचेत करते हैं-

हो निर्मल हृदयाकाश सभी का जग में।
हो चहुँ दिशि यशः प्रकाश सभी का जग में।।

मूल्यों की स्थापना भारतीय साहित्य के अनेक उद्देश्यों में एक है। साहित्य का अर्थ- जिसमें सबका हित निहित हो। जिससे अज्ञानता, अंधकार, पाखंड, दम्भ और कुरीतियों को समाप्तकर, मानवता का उत्थान हो। 'कर्ण' ने अपनी कविताओं में उन सभी मूल्यों को समावेशित किया जिनसे वसुधैव कुटुम्बकम् और सर्वे भवन्तु सुखिनः की भावना का विकास होता है। विकास व्यक्तिगत हो या सर्वगत, सभी का आधार वे मानव मूल्य हों, जो सबके लिए आवश्यक हैं। पारस्परिक प्रेम की उद्भावना हो और आपस के ईर्ष्या-द्वेष का समन हो, कवि 'कर्ण' कामना करते हैं-

आगे बढ़ें, करें निज उन्नति, ईर्ष्या, द्वेष बिसारें।
सबका लक्ष्य एक हो, इसमें ही निज भला विचारें।।

और सभी प्रकार के मूल्यों का आधार 'प्रेम' को उन्होंने मनुष्य के लिए आवश्यक कहा। वे कहते हैं-

पारस्परिक प्रेम पैदा कर, जग में सुयश पसारें।
तन, मन, जीवन, प्राण, धरा, धन सब कुछ हित वारें।।

वेद में मानवता की विजय की कामना की गई है। साथ ही, संगठित होने व सर्वहित की भावना से कार्य करने की प्रेरणा दी गई है-

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानानां उपासते।।

प्रेम का अभिनव प्रयोग इस सूक्त में है। कहा गया है-

प्रेम से मिल कर चलो, बोलो सभी ज्ञानी बनो।

पूर्वजों की भाँति तुम कर्तव्य के मानी बनो।।

मानव मूल्य से जीवन-सर्ग का एक-एक अक्षर, शब्द और पन्ना मुखरित हो, स्वर्णिम बनें, ऐसी कामना 'कर्ण' की कविताओं का सार है। मानव मूल्यों से जीवन की दीपशिखा की लौ निरंतर जलती रहे, यह तब संभव है, जब हम सब इसके प्रति हमेशा सजग रहेंगे। मानव मूल्यों को जीवन का आधार बनाने से जीवन में कभी असंगति, विसंगति और अज्ञानता नहीं आती। कवि 'कर्ण' मूल्यों के प्रति कभी बेपरवाह न होने की बात कहते हैं। सत्य और शुभ के साथ लाभ की भावना भी बनाए रहें। न्याय के साथ करुणा और पुरुषार्थ के साथ निज कर्तव्य की भावना का होना आवश्यक है। 'कर्ण' अपनी कविताओं में स्व-धर्म की मिठास निरंतर घोलते चलते हैं-

प्राप्त उच्च आदर्श करे गुण-गौरव ज्ञान बढ़ावेरे!।

अहो! विश्व में अब यह अपनी यश: ध्वजा फहरावेरे!।।

मानव मूल्यों को जीवन का आधार बनाने के लिए विचारों की शुद्धता आवश्यक है। कवि की कविताओं में इनका रूप देखिए-

शुभ विचार-सागर से नाना शिक्षा-रत्न कढ़ावेरे!।

खोये हुये शक्ति साधन कर सिद्ध सुदिन दरसावेरे!।।

शुभ विचार और पवित्र आचार श्रेष्ठ कर्मों के आधार हैं। जिनके शुभ विचार और आचार हैं, उनके कर्म भी उत्तम होते हैं। कवि प्रत्येक मानव में इन दो आधारों को देखना चाहता है। वह ऐसे देश-समाज का दर्शन और निर्माण देखना चाहता है, जहाँ सब कुछ धर्म के अनुसार हो। मिताक्षराछंद (कवि का प्रयोगधर्मी सर्वथा नवीन छंद) में उनकी कविता की ये प्रेरक पंक्तियाँ-

आज भी उतनी ही प्रभावशालीनी हैं।

जय जय शोभित स्वर्ग सहोदर देश!

सम्मानित सब काल यशोधर देश!!

जय जय सर्व प्रधान पुरातन देश!

आर्यावर्त प्रशस्त धर्म-धन देश!!

'देश-धर्म सबसे बड़ा' की प्रेरणा पुरातन काल से काव्य में दी जाती रही है। महाकवि जयशंकर प्रसाद ने कहा था-

अरुण यह मधुमय देश हमारा।

जहाँ किसी अनजान पथिक को मिलता एक सहारा।

कवि 'कर्ण' के नयन ऐसे भारत को देखने चाहते हैं, जहाँ धर्म, ऐश्वर्य (सद्गुण व धन-सम्पत्ति) आत्मगौरव और देशाभिमान हर ओर लहराता हुआ दिखाई दे। साहित्यकार 'कर्ण' भी इसी धराधाम के हैं। उन्होंने भी भारत के गौरवमय अतीत की कहानियाँ पढ़ीं और तत्कालीन अंधकारमय वर्तमान देखा था। इसलिए उनकी व्यथा निरर्थक नहीं कही जा सकती। 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' की प्रेरणा

उन्हें मिली थी। वे अपना कवि-धर्म निभाकर देशवासियों से कह रहे हैं कि स्वतंत्रता और शांति तुम्हारे पूर्वजों के मूल्य रहे हैं, इन्हें प्राप्त करना इस समय तुम्हारे जीवन का सबसे बड़ा कर्तव्य-कर्म है। देश वंदना की ये पंक्तियाँ -

जय जय भारत ललित ललाम (टेक)
सुकृत सुधा सिञ्चित सुखमय स्वर्ग-भूमि सुख-धाम।
जय जय भारत ललित-ललाम(1)
सम्वित-शील, सदय, सहृदयता-सज्जित, सद्गुण-ग्राम।
सत्याग्राही, सहिष्णु, शुद्धमति, शिव संकल्पाराम।।

महाकवि 'कर्ण' की कविताओं में राष्ट्रवाद का एक जीवंत चित्रण भारत के गाँवों का है जो मर्मस्पर्शी ही नहीं, अतीव प्रेरक भी है। राष्ट्रवाद का दर्शन द्विवेदी युग की कविताओं में यत्र-तत्र-सर्वत्र मिलता है। द्विवेदी युगीन गद्य साहित्य में भी वास्तविक राष्ट्रवाद का उभार है। भला 'कर्ण' उससे अछूते कैसे रहते। कवि 'कर्ण के राष्ट्राभिमान की ये पंक्तियाँ-

सुकवि कर्ण शुचि शान्ति-सरोवर सर्व श्रेष्ठ, सत्काम।
सुर नर मुनि सेवित, सम्मानित सर्व देश-अभिराम।।

मानवता का दर्शन सभी दर्शनों का आधार है। मानवता के बिना मानव होना असंभव है। और मानवता मात्र शब्द नहीं, बल्कि गुण, लक्षण और स्वभाव है। मानवता के मूल्यों के साथ जीने वाला ही सच्चा देश-भक्त और धरती माता का सुपुत्र कहलाने का अधिकारी है। कवि की लेखनी उन सभी मूल्यों को उद्गारित और संचारित करती चलती है, जिन मूल्यों के कारण भारत भारत 'वर्ष' रहा है।

जब कवि 'कर्ण' ने देखा कि भारत विदेशी शासन के पगतल अपनी अस्मिता और गौरव-गरिमा खो रहा है, तो वे स्वयं को रोक नहीं पाते हैं, और कह उठते हैं-

रखता था तू सर्वदा, सर्व श्रेष्ठ उद्देश्य।
भूला जाता है न तू, हे प्राचीन स्वदेश।।

धर्म रूपी धन कवि का वास्तविक धन है। उन्होंने अपनी संपादित पत्रिकाओं में भी इस धन की रक्षा के लिए कई संपादकीय लिखे। अनेक कविताएँ लिखीं। कवि को लगता है यदि धर्म रूपी धन मानव से खो गया, तो उसके पास कुछ भी नहीं बचेगा। अतीत के गौरव को अपनी राष्ट्रपरक कविताओं के माध्यम से देशवासियों को अपनी गौरवमयी संस्कृति, कला और धर्म का स्मरण दिलाते हैं, तो मूल्यों की रक्षा को सर्वोपरि कर्तव्य मानने की प्रेरणा भी उनकी अनेक कविताओं में है।

गद्य और पद्य में अपनी बात कहने के प्रत्येक रचनाकार की अपनी शैली और भाषा होती है। कवि कर्ण सिंह 'कर्ण' की शैली जहाँ उपदेशात्मक है वहीं पर प्रेरणात्मक भी। जहाँ आदर्शवाद है वहीं पर यथार्थवाद भी। उनकी शैली की सबसे बड़ी विशेषता, उसकी सहजता और सुमधुरता है। व्यंग्यात्मक शैली में भी कवि की कविताएँ सहज और सरल हैं। दुरूहता, कृष्टता और उबाऊबन से दूर कवि 'कर्ण की कविताएँ एक समग्र जीवन-दर्शन, राष्ट्र-दर्शन और समाज-दर्शन से ओत-प्रोत हैं। उन्होंने तत्कालीन खड़ी बोली के अतिरिक्त गँवई और ब्रज भाषा के शब्दों का भी प्रयोग यत्र-तत्र-सर्वत्र किया है। इसी

प्रकार वीर रस, करुण रस, शांत रस, वात्सल्य रस और भक्ति रसों का प्रयोग अपनी कविताओं में यत्र-तत्र-सर्वत्र किया है।

द्विवेदी युग में कविता के कुछ मानक निश्चित किए गये। इसी प्रकार छायावाद की रहस्यमयता भी कवि की कविताओं में दिखाई पड़ती है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी कहते हैं, कविता में प्रसाद गुण का होना अति आवश्यक है। द्विवेदी युग में कविता के जिन मानकों को कविता के लिए अनिवार्य कहा गया, उनमें कविता का प्रसाद गुण से युक्त होना चाहिए। कविता को श्रोता के हृदय में किसी न किसी प्रकार के भाव को जागृत करना चाहिए। कविता को श्रोता के चित्त को चमत्कृत करने की क्षमता होनी चाहिए। कविता में श्रवणेन्द्रिय को आह्लादित करने की शक्ति होनी चाहिए। कविता में लालित्य और माधुर्य होना चाहिए। स्पष्ट तौर पर 'कर्ण' की कविताओं में ये सभी मानक (गुण) हमें मिलते हैं। वह चाहे समाज पर आधारित कविताएँ हों या देश पर आधारित। संस्कृति पर आधारित हो या धर्म पर।

मानवता को बचाने और उसकी दुर्दशा पर केंन्द्रित उनकी प्रेरक कविताएँ, हृदय को झंकृत कर देती हैं-

रहा न तेरा नाम, मनुष्यते इस देश में।/इससे सारे काम, सुकवि 'कर्ण' उलटे हुये।।

कवि कर्ण सिंह की संकल्पना मानव मूल्यों के संरक्षण की है तो, सुख, शांति, शीलता के विस्तार की भी है। 'कर्ण' ने अपनी अनेक कविताओं में अपनी व्यथा व्यक्त करते हुए समाज में नव जागरण का आह्वान किया है। समाज सुधार और जीवन सुधार दोनों साथ-साथ हों, जिससे स्व-धर्म की स्थापना हो सके। भय, यातना, दु:ख, शोकादि से उबरने के लिए मुखर होकर आवाज लगाते हैं। राष्ट्र और समाज-धर्म की स्थापना में लगे देश-भक्तों और स्वतंत्रता को ही अपना जीवनोद्देश्य बनाने वाले वीर सपूतों के प्रति कवि की ये पंक्तियाँ तत्कालीन समाज की स्थिति का भी परिचय दे रही हैं-

निर्भयता, सुख, शांति-शीलता, का विस्तार कराओ।
भय, यातना, दु:ख, शोकादिक, से अब हमें बचाओ।।

कवि 'कर्ण' ने अपनी देश परक कविताओं के माध्यम से भारत के अतीत और तत्कालीन भारत की दशा का वर्णन किया है। जय देश! जय स्वदेश! में राष्ट्र के विविध रूपों का जीवंत चित्रण देखते ही बनता है।

दोहा और लावनी छंद का प्रयोग कवि 'कर्ण' ने इतने सुसंगति और आकर्षक ढंग से किया है कि पाठक उसमें रम जाता है। स्वयं को आह्वान करता यह दोहा -

सुकवि कर्ण हम सिद्ध हों, मातृ-भूमि के लाल।
अब तो दिखलादे सुदिन, हमें हमारी चाल।।

अथर्ववेद में पृथ्वीसूक्त में मातृभूमि की वंदना की गई है। इसमें भूमि माता के प्रति पुत्र के कर्तव्यों का वर्णन किया गया है, उसी भावना से युक्त कविताएँ धरती माता के प्रति 'कर्ण' कवि की भी हैं। यह उनके महान् व्यक्तित्व और कृतित्व का तो परिचायक है ही, उनका धरती माता के प्रति अतिशय प्रेम का भी परिचायक है। सत्साहस और सुबल की प्रार्थना हो या आलस्य और प्रमाद त्यागने का संकल्प, स्व-धर्म पालन का कर्तव्यबोध हो या समाज सुधार का पुरुषार्थ, कवि ने प्रत्येक दिशा में अपनी मन की

आँखों को खोलकर देखने का उपक्रम किया है। ऐसा समग्र चिंतन और भाव-बोध कवि 'कर्ण' को 'अति विशेष' बनाते हैं।

आदर्श जीवन निर्माण करना है तो उन सभी मूल्यों को धारण करें जिनसे आदर्श जीवन का निर्माण होता है। सुकवि ने लावनी छंद में सीखने-सिखाने और धारण करने की अभिलाषा व्यक्त की है। 'कर्ण' कहते हैं-

करना हाँ कुछ तो काम, हमें आ जावे!।
करना हाँ नामी नाम, हमें आजावे! (टेक)
हम निज को, हितका पाठ पढ़ाना सीखें।
हम निज पर, हित का रंग चढ़ाना सीखें।।
हम निज में, शुभ कर्तृत्व बढ़ाना सीखे।
हम निज से, मौलिक रत्न कढ़ाना सीखें।।

सुकवि ने एक आदर्श जीवन कैसा होना चाहिए और जीवन में किन-किन मूल्यों को धारण करना आवश्यक है, इस पर उन्होंने विस्तार से अपने भावों को छंदबद्ध किया है। लावनी छंद की कविताओं में एक विशेष प्रकार की रवानगी है। इसी तरह दोहों में देश-समाज की दशा देखकर व्यथा व अकुलाहट है। भजन में जहाँ ईश्वर से देश भारत को उबारने की विनती है तो देश भक्तों से परतंत्रता की कारा तोड़ने का आह्वान। वेद और गीता में वर्णित सुकर्म, सकाम और निष्काम कर्मों के प्रति कवि 'कर्ण' ध्यान दिलाते हैं तो भारतीय संस्कृति और महान् विरासत के प्रति जागृत करते चलते हैं-

गीता-गंगा में पाप-पंक धोने दो।
सुकृति होने दो, बीज भले बोने दो।।
पाने दो स्वातन्त्र्य, परायत्ता खोने दो।।

'कर्ण' कहते हैं, कपट, कलह, कुविचार, कुसंगति, कौटिल्य से मानव मूल्यों का क्षरण होता है। इस क्षरण को रोकने की आवश्यकता है। इसी प्रकार आपसी कटुता, क्रूरता, हिंसा, विश्वासघात, स्वार्थ और कुटेवों को भी त्यागने का आह्वान 'सुयश पसारो' सर्ग में करते हैं। वे कहते हैं, मत भूलों की हम सभी आर्यों की संतान हैं। यह धरा ईश्वर ने आर्यों को सुकर्म और स्वतंत्रता के साथ भोगने के लिए 'वीर भोग्या वसुन्धरा' के रूप में दी है। हमारे पूर्वजों ने कभी हार नहीं मानी। धराधाम पर उनका साम्राज्य रहा है। जो कुछ अतीत में अनर्थकारी हुआ, उसे स्मरण न कर, जो अर्थकारी हुआ, उसका स्मरण करो और देश को स्वाधीन कराओ-

आर्य गण! अब तो सुयश पसारो।
दुर्योधन कुल कण्टकारि को, वार-वार धिक्कारो।
करुणा, मुदिता, मैत्री मण्डित, सहृदयता संचारो।।

कवि 'कर्ण' की राष्ट्र और समाज सुधार की कविताएँ पढ़ते समय राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' में लिखीं कविताएँ स्मरण हों आती हैं, जिसमें गुप्त जी ने अतीत और वर्तमान दोनों का चित्रण करते हुए, भविष्य के प्रति सचेत किया है। कवि 'कर्ण' ने धर्म की महिमा सर्ग के अंतर्गत

‘राजगीत’ गाते हुए कर्म फल और धर्म फल का दर्शन प्रस्तुत करते हैं, तो वहीं पर सत्संग महिमा सर्ग में वे ‘पद’ के अंतर्गत धर्म-नीति अपनाने पर बल देते हुए दिखाई देते हैं-

धर्म-नीति गहि सुधर जाएँगे, बिगड़े सब ही ढंग।
हिलमिल मूढ़ों में न कभी भी, होगी फिर मतिभंग।।

मानव मूल्यों की रक्षा का गुरुतर दायित्व देश के प्रत्येक व्यक्ति और समाज का है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को वे हर प्रकार के मूल्यों को धारण करने का आह्वान करते हैं। और मानव मूल्यों की रक्षा छोटे, बड़े, धनी, निर्धन, स्त्री और पुरुष सभी को करना आवश्यक बताते हैं।

और समय की उपयोगिता और समय पर प्रत्येक कार्य करने की आदत जीवन ही नहीं देश-समाज को उन्नति के पथ पर ले जाने वाला है। कवि कहते हैं-

समय मत व्यर्थ जाने दो, करो कर्तव्य का पालन।
अहो! कवि ‘कर्ण’ निज भू के न क्या तुम काम आओगे?

आधुनिक कविता के आगमन के पूर्व छंदबद्ध कविताओं का युग था। समस्यापूर्ति के लिए जिन विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया जाता था, उनमें सवैया, षट्पदी, मिताक्षरा, दुर्मिल सवैया, नीरद, जयकरी, प्लवगंम, सुरपादप, राला, तिलोकी और लावनी छन्द प्रमुख हैं। प्रचलित छन्दों के अतिरिक्त बहुत कम प्रचलित छन्दों का प्रयोग भी कवि किया करते थे। कवि ‘कर्ण’ ने प्रचलित और अल्प प्रचलित छन्दों का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है। चान्द्रायणी छन्द का यह प्रयोग जिसमें मानव मूल्यों का वर्णन है को पढ़ते समय हृदय में उमंग के उत्स प्रवाहित होने लगते हैं-

सब से बढ़ कर सत्य, धर्म परमार्थ है।
रखना कभी न ठीक हृदय में स्वार्थ है।।

षट्पदी छन्द का यह प्रयोग जिसमें मानव मूल्यों को अपनाने पर बल दिया गया है में कवि ने समाज और राष्ट्र के लिए त्याग का दर्शन दिया है-

करना जीवन दान प्रेम के ठौर दिखा दे।
औरों को भी ठीक यही व्यवहार सिखा दे।

कवि की कविता की सुन्दर और मनोरम क्यारी में सुन्दर, आकर्षक और विविध रंगों वाले इतने पुष्प हैं। यह बताना कठिन है कि कौन-सा पुष्प सबसे सुन्दर, आकर्षक और सुगंधित है। उन्होंने मानव मूल्यों की बात दूसरों को निरा उपदेश के रूप में नहीं की अपितु वे स्वयं मूल्यों से जड़ित सच्चे मानव बनना चाहते हैं। सद्कर्म और पुरुषार्थ के साथ पाप से छूटने और पुण्य अर्जन का भाव रखते हैं। कवि ‘कर्ण’ का ऐसा पारदर्शी और विनम्र कृतित्व और व्यक्तित्व हिंदी साहित्य में सदा अमर रहेगा।

__सम्पर्क :__ दिल्ली (भारत)
मो. 8178710334

दुर्गाप्रसाद श्रीवास्तव

वाचिक शुद्धता

शारीरिक मानसिक शुद्धता की भाँति वाचिक शुद्धता महत्त्वपूर्ण होती है, पर हम उसकी उपेक्षा शब्द के अर्थ या तात्पर्य ग्रहण के आधार पर कर बैठते हैं। यह प्रवृत्ति मातृभाषा के व्यवहार की अपेक्षा विदेशज भाषा के प्रयोग में अधिक परिलक्षित होती है। हम अंग्रेजी के आकर्षण में उसके कतिपय शब्दों के मूलार्थों और अभीष्टोच्चारणों से कभी-कभी भटक जाते हैं।

अनेक अशिक्षित ही नहीं, प्रत्युत शिक्षित जन भी 'लैट्रीन' (Latrine) शब्द का अशुद्ध व्यवहार निस्संकोच रूप से करते रहते हैं। लैट्रिन (ट्री) हुई या नहीं? लैट्रीन (ट्री) ठीक से होती है या नहीं? मैंने कतिपय डॉक्टरों (चिकित्सकों) एवं प्रोफेसरों के मुखों से इस प्रकार के वाक्य अनेक बार सुने हैं। उक्त शब्द का अर्थ मल (faecesh) या (Sediment)या (Excrement of the Bowels) अथवा (Defecation) नहीं, प्रत्युत मल-मूत्र-उत्सर्जन (विसर्जन) का स्थान है- (A place for evacuation of bowels or bladder)इंगित शब्द का अर्थ या हिन्दी रूपान्तर 'शौचालय' है। तथोक्त शिष्ट या नागर समाज में उक्त शब्द के स्थान पर 'टॉयलेट' (Toilet)शब्द आज अधिक प्रचलित है। इसका मूलार्थ शरीर-प्रक्षालन या मज्जन, वस्त्र-धारण केश-सज्जा आदि की प्रक्रिया है- (The process of washing youself, dressing, trwshing your hais, etc.) यह शब्द प्रमुखत: (प्रमुखतया) 'प्रसाधन' (शृंगार) का द्योतक है। 'टॉयलेट-टेबुल' (Toilet-Table)का पर्याय 'ड्रेसिंग-टेबुल' (Dressing-Table) है। इसका हिन्दी रूपान्तर 'प्रसाधन-पटल' है। उक्त शब्द (Toilet) का (एक) दूसरा अर्थ 'मल-मूत्र के उत्सर्जनार्थ एक बड़ा कटोरा (पात्र)' है- (A large bowl for urinating or defecatin gnto.) 'लैट्रीन' एवं 'टॉयलेट' स्थानवाचक शब्द हैं, जुगुप्सित (जुगुप्साकारक) पदार्थ के सूचक नहीं। इनका विशुद्ध व्यवहार अपेक्षित है। इनके साथ 'क्लिअर' (clear) शब्द का नहीं, अपितु 'क्लीन' (clean)शब्द का प्रयोग शुद्ध माना जाता है।

इस प्रसंग में 'स्टूल' (Stool) शब्द पर ध्यान जा सकता है। इसका व्यवहार सामान्यत: 'मल' (Faeces) के अर्थ में और यदा-कदा रिक्त करने (मलोत्सर्जन) के स्थान के लिए होता है - (A place for evacuaton of bowels, Faeces evacuted) इसके सत्यापनार्थ फाउलर (Fowler) द्वारा सम्पादित ('Concise oxford English Dictionary') दृश्टव्य है। यह शब्द पदार्थ और स्थान (दोनों) का वाचक है जबकि पूर्वोक्त शब्द इंगित पदार्थोत्सर्जन के स्थान के ही सूचक हैं।

इस विषय में 'बाथ-रूम' (Bathroom) तथा 'वाशरूम' (Washroom) शब्द भी स्मरणीय हैं।

इन्हें हिन्दी में 'स्नान-कक्ष' एवं 'प्रक्षालन-कक्ष' कहा जाता है। उक्त कक्षों में स्नान और प्रक्षालन की व्यवस्था के साथ मल-मूत्र-विसर्जन का स्थान भी रहता है- (Bath-room- a room containing a bath and waually also a wash basin and toilet. Washroom= A room with washing and Toilet Facilities) इन दोनों शब्दों का 'शौचालय' के अर्थ में व्यवहार अनुचित नहीं कहा जा सकता है, किन्तु 'बाथ-रूम' शब्द का 'मूत्र' या 'मूत्र-विजर्सन' के अर्थ में प्रयोग अनुचित (अशुद्ध) ही होता है। ''उसने बिस्तर पर ही बाथरूम कर ली है। वह बाथ-रूम नहीं रोक सका है। उसे बाथ-रूम लग रही है।'' इस प्रकार के वाक्य अनेक परिवारों में प्राय: सुनायी पड़ते हैं। ''लैट्रीन नहीं हुई। बाथ-रूम नहीं हुई। टॉयलेट नहीं हुई।'' इस तरह की अभिव्यक्तियाँ अशुद्ध (वर्जनीय) हैं। हम लोग 'वाशरूम' का व्यवहार अभीष्ट रूप में करते हैं। बालकों (बच्चों) के मल या मलोत्सर्जन (शौच) के लिए 'पॉटी' (potty) शब्द भी अशुद्ध रूप में प्रचलित है। ''उस बालक ने बैठक में ही पॉटी कर दी है। उस बच्चे के उदर में पीड़ा इसलिए हो रही है कि उसे कल से पॉटी नहीं हुई है। इस बच्चे को दूध पीते ही पॉटी लगने लगती है।'' इन वाक्यों में 'पॉटी' शब्द का शौच के अर्थ में प्रयोग अशुद्ध (अनुचित) है। पॉटी वह कटोरा है, जिस पर कोई बालक (बच्चा) बैठता है और उसका (जिसका) प्रयोग शौच-स्थल (शौचालय) की भाँति करता है- (A bowl for a child to sit on and use as a toilet) उक्त शब्द (Potty) का मूलार्थ 'महत्त्वहीन या सामान्य' है। यह शब्द 'मूर्ख, उन्मत्त या विक्षिप्त' के अर्थ में भी व्यवहृत होता है- (foolish, crazy, Mad.) इसका व्यवहार संज्ञा (Noun) तथा विशेषण (Adjective) के रूपों में किया जाता है।

मौखिक अभिव्यक्ति में विदेशी शब्द की आर्थी त्रुटि से भी अधिक उसके उच्चारण से सम्बद्ध भ्रान्ति हो जाती है। हर प्रकार की अशुद्धि का प्रमुख कारण दूसरों का अन्धानुकरण है। दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों के पथ के अनुसरण में अनुगामी का नैत्रोन्मीलन आवश्यक है- नकल में भी अक्ल का दरवाजा खुला रहना चाहिए। हिन्दी भाषी व्यक्ति को अँगरेजी (अंग्रेजी) शब्दों के उच्चारण के प्रति अधिकाधिक जागरूकता अपेक्षित है। किसी शब्द के लेखन-पठन (उच्चारण) में जो साम्य हिन्दी में परिलक्षित है, वह अंग्रेजी में असम्भव तो नहीं, पर दुर्लभ अवश्य है। अंग्रेजी में उक्त साम्य की अपेक्षा वैषम्य अधिक दिखायी पड़ता है। उक्त भाषा में ऐसे अनेक शब्द उपलब्ध हैं, जिनकी निर्मिति या सृष्टि में प्रयुक्त वर्णों (वर्त्तनी=Spelling) में से एक-न-एक वर्ण अनुच्चरित (शान्त Silent) रह जाता है। आम्ज (Alms=दान या भिक्षा), एजर्न या आजर्न (Adjowon=स्थगित करना), एजूडिकेट या आजूडिकेट (Adjudicate निर्णय करना), काम (Calm शांत होना, शांत करना) (Comb कंघा), कोर (Corps=सैन्य मात्रक या सैन्य इकाई) डम (Dumb=मूक या अवाक्) डाउट (Doult=संदेह, अनिश्चय या सन्देह अनुभूत करना, अविश्वास रखना), डो (Dough=गीला या गूँथा हुआ या गूँथा गया आटा), एज (Edge=किसी क्षेत्र या सतह की बाह्य सीमा, धार, किनारा), फ्लेजलिंग (Fledgeling या fledgling=पक्षी का बच्चा, जिसने अब ही या अभी उड़ना सीखा है।), हाफ (Half=अर्द्ध या आधा), इनडाइट (Indict=किसी व्यक्ति को गम्भीरापराध के लिए दोषारोपित करना, उपद्रववादि का दोष लगाना), नॉट (knot=ग्रन्थि या गाँठ, कठिनाई, समस्या, समुदाय या समूह), साम (psalm= ईश्वर की श्लाघा से सम्बद्ध गीत या कविता-स्तोत्र), सोब्रिके या सूब्रिके (sobriouetor soubriouet=उपनाम/उप-नाम), रॉथ (wrath=अति

रोष), यॉट (Yacht=नौका या तरणी) आदि इंगित प्रवृत्ति के कतिपय उदाहरण हैं।

उक्त वैशिष्ट्य का विपर्यय भी अंग्रेजी में यत्र-तत्र दिखायी पड़ जाता है। वह वर्ण भी किसी शब्द के उच्चारण में आ जाता है, जो उसकी वर्तनी का अंग नहीं होता है। कर्नल (Colonel=एक सैन्याधिकारी का पद या उसकी श्रेणी), लेफ्टेनेन्ट या लेफ्टेनन्ट (Lieutenant=)अपने से उच्चतर अधिकारी का स्थानापन्न उच्चतर अधिकारी का प्रतिनिधि, प्रभारी उच्चाधिकारी, उच्चतर अधिकारी, का कार्य-प्रभार वहन करनेवाला अधिकारी, प्रभारी आदेशक, अधीनादेशक या आदेशकाधीन, उपादेशक, उप-आदेशक), कन्ट्रोलर या कॉम्पट्रोलर (comptroller=किसी समवाय या संस्थान के वित्तीय कार्यों का प्रभारी व्यक्ति), पिट्सा या पीज्जा (pizza= एक पक्वान्न), पिटि सकाटो (Pizzicato=)वायलिन या उसी जैसे वाद्य यंत्र से उत्पन्न निश्चित आरोहवाली तान। उक्त तान उत्पन्न करने के लिए इंगित वाद्य यंत्र का सूत्र अँगुली से खींचा जाता है, चाप से नहीं।), पीट्सरीआ (Pizzeria=पीट्सा या पिट्सा-गृह अर्थात् वह स्थान, जहाँ यह पक्वान्न विक्रयार्थ निर्मित होता है, उक्त भोज्य पदार्थ से संबंद्ध भोजनालय)।

अंग्रेजी में ऐसे शब्द भी उपलब्ध हैं, जिनका उच्चारण उनकी व्याकरणिक कोटि के परिवर्तन के साथ परिवर्तित हो जाता है अर्थात् किसी शब्द का संज्ञा के रूप में उच्चारण उसके क्रिया के रूप में प्रयुक्त होने पर परिवर्तित हो जाता है-सिंडीकेट (Syndicate=)सामान्य हित की प्रोन्नति के लिए व्यक्तियों या व्यावसायिक प्रतिष्ठानों का समुदाय या समूह, साहित्यिक लेखों के उपार्जन या अधिग्रहण तथा उनके विभिन्न सामयिक पत्रों में एक साथ या एक ही समय पर प्रकाशन के लिए व्यक्तियों का समवाय या समुच्चय-संज्ञा) सिंडीकेट (क्रिया Syndicateकोई परिचालन या संचालन किसी समुदाय अथवा समवाय से व्यवस्थित या नियंत्रित करना, कोई वस्तु विविध विधियों से एक ही समय पर प्रकाशित या प्रसारित करना), यूस (संज्ञा Use=व्यवहार या प्रयोग) यूज (क्रिया (Use=प्रयोग करना, व्यवहार करना, किसी वस्तु का समस्त उपभोग करना)। उक्त संज्ञा से निर्मित विशेषण के उच्चारण में उसका (संज्ञावाला)उच्चारण अपरिवर्तित रहता है-यूसलेस, यूसफुल (Useless, Useful)। एन्वेलप (संज्ञा Envelop=लिफाफा, आवरण)एन्वेलप (क्रिया (Envelop=आवृत्त करना, पूर्ण रूप से ढकना), क्लोस (विशेषण Close=सुदृढ़ या पक्का, मैत्रीपूर्ण या अति स्नेहपूर्ण, बन्द, सीमित, संकुचित, गुप्त, प्रतिबन्धित, सघन, समीप, अवरुद्ध, निषिद्ध, सावधान, सूक्ष्म आदि) क्लोस (संज्ञा Close=आवृत्त स्थान, विद्यालय का क्रीड़ा-स्थल, बिशप के सिंहासन से सम्बद्ध प्रमुख गिरजागृह का दीवालों से आवृत्त या सीमित स्थान या क्षेत्र, उपसंहार, समाप्ति)क्लोज (क्रिया-Close=)बन्द करना, बन्द होना, उपसंहार करना, समाप्ति या अन्त की ओर आना या लाना, निर्णय करना या निपटाना), लाइव (विशेषण-Live=प्रत्यक्ष, जीवन्त, सीधा, यथार्थ, वास्तविक, घटना के समय पर ही प्रस्तुत या प्रसारित अर्थात् पूर्वाभिलिखित या पूर्व निर्मित नहीं, तात्कालिक) लिव (क्रिया-Live)जीवित होना, जीवित रहना, विशिष्ट विधि से जीवन व्यतीत करना), रेकॉर्ड (संज्ञा Record अभिलेख), रिकॉर्ड (क्रिया(Record=) लिखित रूप में प्रस्तुत करना, पंजीकृत करना, सन्दर्भार्थ अथवा स्मरणार्थ पठनीय रूप में प्रस्तुत करना, पुनरुत्पादन या पुनर्प्रस्तुति के लिए किसी ध्वनि या दृश्य को स्थायी रूप में परिवर्त्तित करना) आदि।

विश्रुत समाचार-पत्र, साहित्यकार, शिक्षक, दूर दर्शन (Felevision)के समाचार स्रोत (News channels) आदि वाचिक शुद्धि के आदर्श माने जाते हैं, पर वे कभी-कभी एक दूसरे से भिन्न पथ पर

चल पड़ते हैं। कोरोना (corona) की इस अवधि में 'क्वॉरन्टीन' (Quarantine=)संक्रामक रोग से ग्रस्त व्यक्तियों पर लगायी गयी अथवा थोपी गयी पार्थक्यावधि अर्थात् वह कालांश, जिसमें किसी रुग्ण व्यक्ति का दूसरे के सम्पर्क में आना निषिद्ध हो) शब्द अधिक प्रचलित है। यह एक समाचार-स्रोत पर 'क्वॉरन्टाइन', तो दूसरे पर 'क्वॉरेन्टाइन' और तीसरे स्रोत पर 'क्वारेन्टीन' बोला जाता है। दो स्रोतों पर इसका शुद्ध उच्चारण ऐसी ही भिन्नता का संकेत हिन्दी के कतिपय समाचार-पत्रों में उपलब्ध होता है। वेदों, स्मृतियों एवं मुनियों के मतों के वैभिन्य से भ्रमित सामान्य जन के लिए महाजनों का मार्ग श्रेयस्कर बताया गया है। इसी प्रकार प्रख्यात विद्वानों शिक्षकों, समाचार-पत्रों, समाचार-स्रोतों आदि की मत-भिन्नता के जाल में उलझे (हुए) व्यक्ति के लिए शब्द-कोश (Dictionary) का पथ सर्वाधिक निर्विघ्न, हितकर तथा प्रामाणिक सिद्ध होता है। 'कोरोना' (Corona=)सूर्य या चन्द्र के चारों ओर दिखायी पड़नेवाला प्रभा-मण्डल या आलोक-वृत्त) भी कहीं 'कोरोना' या 'कॉरोना' सुनायी पड़ता है। इंगित विषाणु उक्त प्रभा-पुञ्ज या प्रकाश-चक्र की भाँति दृष्टिगोचर होता है। रोग का नाम उससे संबंद्ध विषाणु के नाम (Corona vissease covid)पर ही पड़ गया है।

कतिपय जुगप्सा-सूचक विदेशी शब्दों का विश्लेषण-विवेचन शेखचिल्लीपन प्रतीत होने पर भी आवश्यक है। हमें विदेशज शब्दों के मोह-पाश से ग्रस्त होने से पूर्व उस पाश के सूक्ष्म सूत्रों एवं रंगों से अवगत होना चाहिए। शब्दिक अनभिज्ञता हास्यास्पद त्रुटियों का स्रोत सिद्ध होती है। शब्द-कोश पर निर्भर रहनेवाला व्यक्ति वाचिक शुद्धि के उत्संग में आसीन हो जाता है। उसे किसी वक्ता या लेखक के पथ के अनुसरण की अपेक्षा नहीं होती है। उसके विचार, भाव एवं अभिलाष शुद्ध तथा प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के राजमार्ग पर सहजतया अग्रसर हो जाते हैं। महर्षि पतंजलि के अनुसार सम्यक रूप से ज्ञात एवं सुप्रयुक्त एक शब्द स्वर्ग में और (इस) लोक में कामधेनु हो जाता है। मानवीय बुद्धि और हृदय की विविध वीथियों का वर्त्तन वाणी (भाषा) के मंच पर होता है और इस मञ्च का निर्माण अनुभव एवं चिन्तन के अनल में तपे सटीक-सार्थक तथा प्रभावशाली शब्दों की ईंटों से होता है। मनुष्य को ईश्वर या निसर्ग से प्राप्त वाणी का वरदान अन्य प्राणियों (मानवेतर जीवों) में उसकी श्रेष्ठता का प्रतिपादक सिद्ध होता है। अपनी भावना, कामना एवं अनुभूति अधिकाधिक रम्य रूप में व्यक्त करने की जो क्षमता मानव में है, उससे मानवेतर सृष्टि के पशु-पक्षी आदि जीव वञ्चित हैं। रागात्मक एवं बौद्धिक (दोनों प्रकार का) साहित्य शब्दों के प्रदीपों से आलोकित होता है। ज्ञान-विज्ञान का हर क्षेत्र मानवीय वाणी की ज्योति से प्रकाशित है। शब्दालोक अज्ञानान्धकार का विनाशक होता है। देश-काल-पात्र के अनुसार चयनित शब्द के व्यवहार से विरूप स्वरूप में, विकर्षण में, अभद्र भद्र में, गरल सुधा में, नीरस सरस में, शत्रु मित्र में, वैर प्रेम में, तिक्त मधुर में परिणत हो जाता है।

अधिकाधिक शिष्टता-नागरता के प्रदर्शन की कामना से प्रेरित व्यक्ति का विदेशी (अंग्रेजी) शब्दों के मोह-पाश से ग्रस्त होना आपत्तिजनक नहीं है। अनाराष्ट्रिय (अन्तर्राष्ट्रीय-अशुद्ध) भाषा के सिंहासन पर सुशोभित अंग्रेजी के अनुचित प्रयोग पर अँगुली उठाना अनभीष्ट नहीं है। हमें इस भाषा के शब्दों के समुचित या शुद्ध व्यवहार पर ध्यान केन्द्रित करने की अपेक्षा है। यह लक्ष्य साधना से उपलब्ध होता है। शब्द साधना से साध्य होने से भारतीय दर्शन में ब्रह्म माना गया है।

सम्पर्क : *ग्वालियर (म.प्र.)*
मो. 8770271691

जगदीश 'जोशीला'

बेटियाँ

वस्तु नहीं जो करते हो दान बेटियाँ।
सृष्टि समृद्धि में सामर्थ्यवान बेटियाँ।।

वीरान गृह उद्यान की बागवान बेटियाँ।
दोनों कुलों का रखती हैं मान बेटियाँ।।

संसार में करती हैं गर्भाधान बेटियाँ।
करों नहीं गर्भ में ही कुर्बान बेटियाँ।।

सहती हैं जीवन भर अपमान बेटियाँ।
बेटों की तरह ही सभी इन्सान बेटियाँ।।

भूलें नहीं भगवान का वरदान बेटियाँ।
बेटे यदि हैं बाण तो कमान बेटियाँ।।

धैर्य धर करती हैं गरलपान बेटियाँ।
नवपीढ़ी में संस्कारों की खान बेटियाँ।।

दुख-सुख दोनों में समान बेटियाँ।
दैवीय गुणों की रहीं पहचान बेटियाँ।।

होतीं 'सत' सुरक्षा में बलिदान बेटियाँ।
पिता-पति दोनों कुलों की शान बेटियाँ।।

जननी रूप धार बनतीं महान बेटियाँ।
माता का पावन पाती हैं सम्मान बेटियाँ।।

सत्कारों में बनती नहीं व्यवधान बेटियाँ।
खिले सुवासित पुष्पों का बागान बेटियाँ।।

हर समय रहती हैं सावधान बेटियाँ।
सिरदर्द बनीं परिवार की जवान बेटियाँ।।

जीवन भर स्वीकारतीं फरमान बेटियाँ।
पदों का बदले बार-बार परिधान बेटियाँ।।

सुख का घरों में करती हैं सन्धान बेटियाँ।
सहन शक्ति में असीम बलवान बेटियाँ।।

छल-कपट से रहें अन्जान बेटियाँ।
सदैव सेवा का करें दान बेटियाँ।।

रौद्र रूप धरें तो बने श्मशान बेटियाँ।
उल्लास में हैं भैरवी का गान बेटियाँ।।

आतुर अब छूने को आसमान बेटियाँ।
अब चली हैं बन्दूकों को तान बेटियाँ।।

चला रहीं समुद्र में जलयान बेटियाँ।
उड़ातीं आसमान में विमान बेटियाँ।।

हर क्षेत्र में बना रहीं स्थान बेटियाँ।
शिक्षा के दम पर भर रहीं उड़ान बेटियाँ।।

जीवन भर देती हैं इम्तहान बेटियाँ।
गीता, बाईबिल और हैं कुरान बेटियाँ।।

हर गृहस्थी की रही है शान बेटियाँ।
संकट में 'जोशीला' को दें ज्ञान बेटियाँ।।

भगोरिया

लाल, गुलाबी, पीत अम्बर पहने, साफा सुशोभित मस्तक पर।
घुट्टन से ऊपर तक धोती पग थिरकें माँदल की दस्तक पर।।
हाथ में पहना चाँदी का कड़ा होंठों पर बन्सी की है धुन।
आँखों में कजरा, हाथ में गजरा, पान से अधर लगे जस खून।।
हाथ में तीर-कमान लिये, कान में लटकते चाँदी के कुण्डल।
मस्ती में मस्त हुए महुआ की डोलते हुए ढूँढ़ रहे सम्बल।।
उछल-कूद मचा रही महुआ भूले युवा सुता की रखवारी।
ठुमक-ठुमक लयबद्ध नाचें, माँदल की थाप पे दे किलकारी।।

गोरी का आदिम सौंदर्य निखरा, लहँगा लहराये रंग-बिरंगा।
ढीली चोली में अछूता नवयौवन ओढ़नी से ले रहा है पंगा।।
रंग फड़कती ओढ़नी ओढ़े, अल्हड़ चाल लुभा रही मन को।
देह सजा लाई है गहनों से, बेहाल करे यौवन साजन को।।
नाक में वजनी नथनी का भार, अधर पान की लाली लिये है।
लोकगीतों के सुरों पर थिरकती, यौवन मद की मदिरा पिये है।।
झुण्ड के झुण्ड तकें रमणी को, यौवन भार से लदी सजनी है।
युवक ताकते, नैन न थकते, जैसे शशि की उजली रजनी है।।

प्रिय तरुण करे प्रणय निवेदन, खेल बना तब आँखमिचौली।
धक-धक-धक-धक धड़के हिया, चोली में कपोतों की ठिठोली।।
पान स्वीकारा, तनिक मुस्काई, मुख से न बोले मन की बोली।
घूँघट ओट से याचक बनकर, फैला रही है प्रेम की झोली।।
पान स्वीकारे, गुलाल स्वीकारें, स्वीकारा हृदय ने यही पिया है।
दोनों भागें हाट से 'जोशीला', परम्परा यही तो भगोरिया है।।

सम्पर्क : *गोगावाँ, जिला-खरगोन (म.प्र.)*
मो. 9424069577

सीताराम गुप्ता

मरण

मित्र!
तुम मरना चाहते हो
मरो
मेरी शुभकामनाएँ तुम्हारे साथ हैं
विश यू ऑल द बैस्ट
ये जीना भी कोई जीना है ऐ दोस्त
जहाँ एक बार भी मरण न हो
एक बार गर ठीक तरह से
मर पाओगे
तो बच जाओगे
क़िस्तों में मरने से
बार-बार जलने से
लेकिन क्या तुम
अर्थ जानते हो मरने का
नहीं दोस्त
मरने में
और इस भौतिक देह के तजने में
कोई साम्य नहीं है
तिल-तिलकर मरने से होना मुक्त
यही मरण है
सही अर्थ में
अंदर से होता है मरण
मरण विषधर-सी डसती इच्छाओं का

मरण कामनाओं और कुंठाओं का
मरण अभावों का ईर्ष्याओं का
मरण राग का
मरण द्वेष का
जीने के विपरीत नहीं होता है जो
वही मरण है
नवोन्मेष या पुनरुत्थान है मरना
एक नए रूप में जीने की चाहत
एक सही रूप में जीने का साहस
यही सचमुच है मरना
यही मरना है अद्भुत
आओ दोस्त!
मरो ख़ुद
और करो मुझको भी प्रेरित
ताकि उत्सव जीवन का
मना सकें हम
गा सकें हम
जा मरने से जग डरे मेरे मन आनंद।
कब मरहुँ कब पावहुँ पूरन परमानंद।।

सौंदर्य

कहते हैं
झुकता है
फलों से लदा वृक्ष
फलों से लदा ही नहीं
फूलों से सजा वृक्ष भी
झुकता है
छोटे पौधे
कुछ मग़रूर क़िस्म के
तन जाते हैं
खिलते ही एक-दो फूल

फूलते तो सभी हैं
छोटे-बड़े पौधे और पेड़
जो झुकना जानते हैं वे
फलों के भार से ही नहीं
झुक जाते हैं
फूलों के सौंदर्य से भी
जो जानता नहीं झुकना
कैसा फूल?
सौंदर्य नहीं रंग-रूप में
गंध और स्पर्श में भी नहीं है सौंदर्य
सौंदर्य है नम्रता में
जो नम्र है
वही तो है सुंदर
बड़ा भी वही है

सम्पर्क : दिल्ली (भारत)
मो. 9555622323

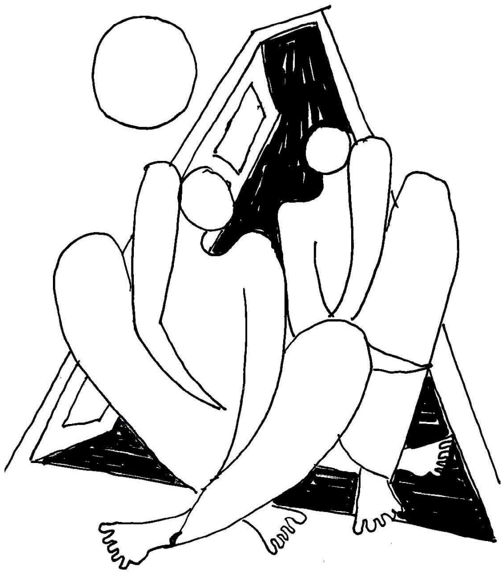

राजीव कुमार तिवारी

तुम लौट कर आओगी

नदी के इस किनारे मैं
आज भी आती-जाती लहरों से
बहते ठहरे पवनों से
तुमको टोह लेता हूँ
तुम उस किनारे हो भी या नहीं पता नहीं
पर इससे मेरी प्रतीक्षा
किसी तरह अपूर्ण नहीं रहती
मेरा सूरजमुखी मन
आज भी
तुम्हारे होने की धूप की तरफ खींचता है
मेरी यात्रा
तुम्हारी दिशा में ही हर बार मुड़ती है
मेरा मन कहता है
तुम लौट कर आओगी मेरे पास
पर उस निश्चितता के साथ नहीं
जिस तरह प्रतिदिन
अस्त होने के बाद
अगली भोर
लौटता है सूर्य
जिस तरह लौटता है
सुख-दुख का चक्र आगे-पीछे
जिस तरह उथल-पुथल के बाद
मन में लौटती है शांति
जिस तरह अंधकार के पास लौटती है छाया
तुम लौट कर आओगी मेरे पास
जिस तरह नींद के पास लौटता है स्वप्न
जिस तरह लौटता है स्वर

कंठ के पास
हर एक चुप्पी के बाद
जिस तरह लौटते हैं खग
वृक्ष के पास
अपनी उड़ान पूरी कर
तुम्हारे पाँव के निशान
मेरे मन की गीली मिट्टी पर छपेंगे
किसी की दृष्टि में मगर नहीं आएँगे
तुम्हारे आने से मेरे
देह का मुरझाया पौधा हरा हो जाएगा
सुगंध और रस से पूर जाएगी
मेरी अनुभूति
प्रखर हो जाऊँगा मैं
तुम्हारी उपस्थिति के उजास से
किसी का ध्यान मगर नहीं खींचेगा उस ओर
तुम लौटकर मेरी स्मृति
और अनुभूति में
बार-बार आओगी
मेरे मन में
सदा के लिए बसी
अपनी छवि को
और आत्मीय
और स्निग्ध करने के लिए।

दुःखी आदमी से मिलना

जब भी किसी
दुखी और परेशान आदमी से मिलना
उसकी उससे ज़्यादा सुनना
अपनी उससे कम कहना
मत कहना उससे
चीजें इस हद तक
सही हैं तुम्हारी जिन्दगी में
कि भरे हुए हो तुम

ख़ुशी से लबालब
यह भी जाहिर मत होने देना उसपर
कि तुम उसके दुखों से जुड़ने का
बस स्वांग भर कर रहे हो
नहीं जुड़ पा रहे हो उसके दुखों से
उसके धरातल पर
उसके ज़ख्म पर
बिना उसे जाहिर किए
संवेदना का मलहम लगा देना
हो सके तो
उसे नसीहतें न ही देना
हाँ उसे
आँसुओं में अपना दर्द बहाने के लिए
अपने काँधों और सीने का
सहारा ज़रूर देना
दुखी आदमी
अपने दुखों से ही भरा होता है
कंठ तक
उसे और कोई दुख देकर
उसके दुखों को
उसकी आँखों तक न ले आना
उसे भरसक भरोसा दिलाना
कि वह छूट जाएगा
अपने दुखों की पकड़ से
बस कुछ समय की बात है
जीवन अपनी लय में
वापस लौट आएगा
दुख का आना-जाना
जीवन की गति को बनाए रखने का जरिया है
बस समय और संयोग की बात है
किसी के जीवन में आकर बीत गया
किसी के जीवन में आना शेष है
और उसके जीवन में बीत रहा है दुख।

पिता होना

मनुष्य होने की तरफ
सबसे प्रबल और
विश्वसनीय प्रस्थान है
संबंध वृक्ष का विस्तार भर नहीं
आत्मा का उर्वर होना भी है
पिता होना
संसार की तरफ
हमारी दृष्टि का
ज्यादा आत्मीय और गहरा होना है
पिता होना
बहुत तेज बहती धार का
सुंदर और सहज प्रवाह बन जाना है
पिता होना
जीवन के तमाम अभावों के बावजूद
संपन्नता का सबसे प्रामाणिक बोध है
पिता होना
पिता होना
कवच होना है
ढाल होना है
छत्र होना है
पिता होना
नाव होना है
गीतों की धुन होना है
धार को तेज करने वाला पत्थर होना है
पिता होना
समय की ढलान से
लुढ़कते उम्र के पत्थर के लिए
एक शुभ आश्वासन होना है
पिता होना
जीवन की एकरसता
को भंग करने वाली

सबसे बड़ी घटना है
पिता होना
सभ्यता के पहिए को आगे बढ़ाने में
अपने हिस्से का जोर/ अंशदान है
पिता होना।

गंगा तट : एक नीरव दुपहरी में

थिर है गंगा का जल
छवि उसमें
सूर्य और मेघों की
दिखती है स्पष्ट
उदास घाट पे
खूटे से बँधी है एक नाव
प्रतीक्षा की उकताहट
जिसकी आँखों में है
उभरी हुई
यहाँ वहाँ
बिखरे पड़े हैं कुछ पत्थर
मूक दृष्टा से
हस्तक्षेप नहीं करते जो
समय के गति क्रम में
तीर्थ पुरोहित कुछ
भक्त गण दो चार
दो एक फूल प्रसाद
और पूजा के सामानों
के दूकानदार
और एक चुप-चुप बोलता मंदिर
इस नीरव दुपहरी के मौन को
भंग कर रहे हैं
बीच-बीच में।

सम्पर्क : *देवघर (झारखंड)*
मो. 9304231509

बृजेश सिंह

एक तितली की मृत्यु

शरद ऋतु की चमकीली धूप में
मेरे चलते कदम ठिठक गये;
दुर्योग से मेरे पैर तले
एक तितली लगभग कुचल गयी।
पहले सोचा मैंने, वह बैठी है सड़क पर;
मैं झुका डालने उस पर एक नजर,
बस देखने कि उसमें साँसें शेष हैं?

काल कवलित हुई थी वह
कुछ क्षण पहले ही,
पर दोनों एंटीना उसके लहरा रहे थे
हवा में अब भी;
उसकी पतली टाँगों में
जमीन पकड़ने की ताकत शेष थी;
उसकी आँखों के काले लैंसों से
धूप चमक रही थी अभी भी,
उसके रंगीन चित्ती पंख हुये थे निर्जीव,
उसका सौन्दर्य शांतिमय हुआ
कहीं अधिक पूर्ण,
तब के बनिस्बत जब वह थी सजीव।

उसकी मृत्यु ने मुझे
खूबसूरत शब्द सोचने को मजबूर किया;

पर खूबसूरत शब्दों से
उसकी मृत्यु का वर्णन नहीं किया जा सकता है।
अनायास मैंने उसे अँगुलियों में उठा लिया;
और लॉन में वहाँ रख दिया,
जहाँ लोगों का आना निषेध था;
यही अंतिम संस्कार उसके लिए श्रेष्ठ था।

मैं कभी नहीं भुला पाऊँगा
लॉन के उस घसीले हिस्से को,
रेलवे स्टेशन से पहले
पूर्व-पश्चिम मार्ग पर;
एक उच्च वोल्टता पोल के नीचे,
पहली क्रॉसिंग पर।

सम्पर्क : *गाजियाबाद (उ.प्र.)*
मो. 9810628567

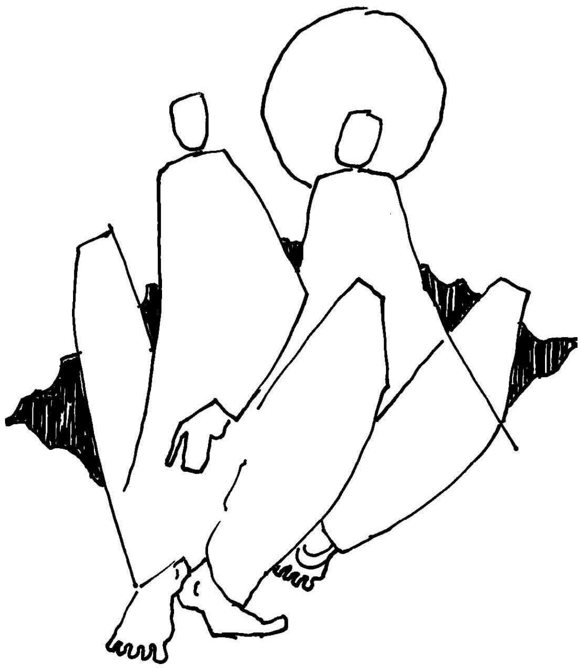

गोवर्धन यादव

उदास नदी पर सात कविताएँ

सूख कर काँटा हो गई नदी,
पता नहीं, किस दुख की मारी है बेचारी?
न कुछ कहती है,
न कुछ बताती है
एक वाचाल नदी का
इस तरह मौन हो जाने का
भला, क्या अर्थ हो सकता है?

नदी क्या सूखी
सूख गए झरने
सूखने लगे झाड़-झंकाड़
उजाड़ हो गए पहाड़
बेमौत मरने लगे जलचर
पंछियों ने छोड़ दिए बसेरे
क्या कोई इस तरह
अपनों को छोड़ जाता है?

उदास नदी
उदासी भरे गीत गाती है
अब कोई नहीं होता संगतकार उसके साथ
घरघूले बनाते बच्चे भी अब
नहीं आते उसके पास
चिलचिलाती धूप में जलती रेत
उसकी उदासी और बढ़ा देती है

सिर धुनती है नदी अपना
क्यों छोड़ आयी बाबुल का घर

न आयी होती तो अच्छा था
व्यर्थ ही न बहाना पड़ता उसे
शहरों की तमाम गन्दगी
जली-अधजली लाशें
मरे हुए ढोर-डंगर

नदी-
उस दिन
और उदास हो गई थी
जिस दिन
एक स्त्री
अपने बच्चों सहित
कूद पड़ी थी उसमें
और चाहकर भी वह उसे
बचा नहीं पायी थी।

नदी-
इस बात को लेकर भी
बहुत उदास थी कि
उसके भीतर रहने वाली मछली
उसका पानी नहीं पीती
कितनी अजीब बात है
क्या यह अच्छी बात है?

घर छोड़कर
फ़िर कभी न लौटने की टीस
कितनी भयानक होती है
कितनी पीड़ा पहुँचाती है
इस पीड़ा को
नदी के अलावा
कौन भला जान पाया है?

सम्पर्क : *छिन्दवाड़ा (म.प्र.)*
मो. 9424356400

कान्ता रॉय

जिया जले जाँ जले

पाखी बैनर्जी, उसे समझ में ही नहीं आया कि यह नाम दूसरों के लिए इतना महत्त्वपूर्ण कैसे हो सकता है जबकि उसके नाम ने कोई प्रख्याति नहीं पाई थी। उसने समाज में जन कल्याण के लिए कोई खास काम भी नहीं किया था। जब वह छोटी थी तब उसके पिता ने एक बार किसी बात पर कहा था कि हम किसी का अहित नहीं करते, किसी को तकलीफ़ नहीं देते हैं। देश और समाज के बनाए कानूनों का अनुपालन करते हैं तो यह भी देश सेवा के अंतर्गत आता है। इस तरह से देखा जाए तो मैंने भी देश और समाज के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह किया है। यह बात और है कि कानून से बचने के लिए उसने सड़क किनारे दुर्घटना के शिकार उस व्यक्ति की मदद नहीं की थी। उससे इतना भी नहीं हो पाया था कि नजदीक के थाने में एक फोन करके इत्तिला ही कर दे। वह नैतिक जिम्मेदारियों से मुक्त रहकर चलने वाली प्राणी है। आत्ममंथन करने के पश्चात् वह ग्लानि महसूस नहीं करती। वह अपने इस महत्त्वपूर्ण नाम से संतुष्ट थी। इतने बड़े संसार में यही तो एक पहचान उसकी अपनी थी। बाकी तो सब छूट गए थे। उसने अफ़सोस के साथ आकाश में छा रहे बादलों को देखा। महत्वाकांक्षी लड़की किसी की नहीं हो सकती है। आद्र स्वर में एक पुकार उठी और घुट कर अन्दर ही रह गयी। मन कातर हो उठा। माता-पिता का साया उठने के बाद अब बचा क्या था! घर-परिवार उसके लिए नाम मात्र के रह गए थे। परिवार का अर्थ सामाजिक प्रवंचनाओं में कुछ युगलों का एक साथ दिखाई देना। जैसे कि पूजा-अनुष्ठान और अदबी मिलना-जुलना ही जीवन का पर्याय है। नितांत अकेली। उसके हिस्से अब कोई दोस्ती का रिश्ता भी ऐसा नहीं बचा था जो उसके मन की परतों को टटोल कर गहरे उतर सके, इसका मतलब ये भी नहीं था कि अपना कहने वाला उसका कोई नहीं। इला, चंद्रा, सुबोध, विनीत, बकुल दा, विभास दा ...कई चेहरे, सारे के सारे युगल छवि। एकाएक सबके चेहरे तमतमा गए। वे सब सामने आकर खड़े हो गए और सवाल करने लगे- क्या हम तुम्हारे अपने नहीं? उसने अपनी जीभ काटी। उसे लगा मानो यह कहकर अपनी बड़ी क्षति कर ली है। अपना कहने में और होने में फर्क तो होता ही है। एकाएक उसे कई घटनाएँ याद आने लगीं। ये ऐसे दोस्त हैं जो बेरोकटोक धड़धड़ाकर कभी भी उसके घर घुस आतें है, रसोई तक पर कई बार अपना आधिपत्य जमा लिया करते हैं और अभिभावक की तरह उसके हितों का ध्यान रखते हैं, उस पर हक़ जमाते हैं। इतना सब पाकर भी नितांत अकेली। वह युगल छवि अब धूमिल हो गई थी।

विधवा नहीं थी पर विधवाओं सी जिंदगी जी रही थी। दरअसल उसने खुद जानबूझकर सबसे दूरी बनाये रखने की कोशिश की है। उनको लगता है कि इनमें पलाश दा का हाथ है, लेकिन सच तो यही है कि इसके पीछे पलाश दा नहीं हैं। ये बात वह कई बार समझा चुकी है फिर भी जाने क्यों लोग अपनी समझ के आगे सोचना ही नहीं चाहते। दरअसल उन लोगों को यह बात जरा भी हज़म नहीं होती कि उसका एकाकीपन स्वयं का चुना हुआ है। स्त्री के लिए जाने क्यों समाज ये धारणा बना कर चलता है कि वह अपने लिए अकेलापन नहीं चुन सकती। एकाकीपन की बात सोचते ही दिन भर की आपाधापी का ख्याल आया। मन कसैला हो गया। हुँह एकाकीपन! किस बात का एकाकीपन। सुबह से शाम तक रोटी, कपड़ा और मकान के जुगाड़ में जुटी औरत के भाग्य में एकाकीपन का सुख कहाँ, इसे पाने के लिए बैंक में प्रचुरता से बैलेंस चाहिए होता है। सोचते हुए मन में एक उफान सा उठा। रोजी-रोटी का सवाल ही आज उसके जीवन का सबसे बड़ा है। उसने घड़ी की ओर देखा और हड़बड़ाई। तभी फोन की घंटी बजी।

'आज शाम फुरसत मिलते ही पहले मेरे घर आना।' मिताली चक्रवर्ती का फोन था। आवाज सुनकर लगा मानो दूर उठता कोई बवंडर करीब बढ़ता आ रहा हो। ठहरे हुए वक्त में जैसे कोई हलचल मची हो। क्या हुआ होगा?

'आज ही आना है?' सुनते ही जवाब में चौंक कर उसने पूछा था।

'हाँ, आज ही। जरूरी बात करना है। अर्जेंट समझो।' उसने दबाव महसूस किया।

अब कोई दूसरा विकल्प नहीं था। हामी भर दी लेकिन मन में प्रश्न उफनने लगे। मिताली चक्रवर्ती उसकी दोस्त कम अभिभावक अधिक थीं। उनका फोन आने का मतलब उनके आदेशों का पालन करना होता था।

जरूरी बात, ऐसा क्या हो सकता है? मिताली चक्रवर्ती, द ग्रेट मिताली चक्रवर्ती, कभी इस तरह से उसे बुलाएगी, विश्वास नहीं हुआ। आवाज में तीखी सी कंपन थी। सर्र से कलेजे में चुभने वाली। मन अँदेशे से भरा हुआ था। थकी सी आवाज में आदेश से अधिक इस बार निवेदन महसूस हुआ था। मिताली चक्रवर्ती एक मजबूत शख्सियत का नाम है। ऐसी सख्त महिला, एकाएक इतनी कमजोर। कैसे? क्या, क्यों? मन समंदर सा हिलोरें लेने लगा। कुछ तो बात है। तूफान आने वाला है या आकर गुजर चुका है। इसकी वजह कौन हो सकता है? उन्हें तो अपने निजी जीवन में किसी की दखल पसंद नहीं। गम्भीर मसला होगा। बुलाया है तो जाना ही होगा।

सोचते-सोचते वह खुद की ओर लौट गयी।... वह भला क्या मदद कर पाएगी। उसके पास है ही क्या? सिवाय एक ढर्रे में बँधी जिंदगी के, जिसके पास न कोई रास्ता, न ही कोई उद्देश्य।

मन की इस ऊब से उबरने के लिए आज ऑफिस से छुट्टी लेकर टालीगंज नीलू मामी से मिलने जाने का सोच रही थी। जब कभी स्नेह और अनुराग की चाशनी में पगने की इच्छा होती, नीलू मामी से मिलने चली जाती। स्निग्ध स्नेह से अच्छादित नीलू मामी का घर उसके लिए मंदिर जाने जैसा था। लेकिन आज मन्दिर जाना नहीं हो पायेगा। अब मिताली चक्रवर्ती के यहाँ जाना होगा। सारा प्रोग्राम उल्टा-पुल्टा हो गया है। वहाँ के लिए मानिकतला से पूरे चालिस मिनट लगते हैं। पहले तो उसने ऑफिस जाने का बहाना बना कर टालना चाहा था लेकिन शाम को आने का कह दिया। वैसे भी बहुत एहसान हैं उनके, काश कि

वह उनके किसी काम आ सके। वह अपने कॉलेज के दिनों से ही मिताली चक्रवर्ती के व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों से प्रभावित रही है। वे लेखक के साथ फिल्म निर्मात्री भी हैं। 'आलोर तलाय' का निर्देशन भी उन्होंने किया था तभी तो फिल्म सुपरहिट रही थी। कभी-कभी उसे लगने लगता है कि वह बड़ी किस्मत वाली है, कारण उनकी जैसी महान हस्तियों का साथ किस्मत वालों को ही मिलता है। मास मिडिया में उसका दखल देख उन्होंने शुरू में उसे अपने साथ ही काम पर रखना चाहा था लेकिन उस माहौल को वह अपना नहीं सकी थी। बाद में कह सुन कर उन्होंने ही यह नौकरी लगवायी थी।

इस पद पर नौकरी पाना इतना आसान भी नहीं था। बड़े साहब ने प्रतिभा बाद में देखी थी, पहले तो उनकी पैरवी ही काम आई थी। बड़े साहब से मिताली चक्रवर्ती का रिश्ता क्या है, वह नहीं जानती लेकिन यह सच है कि उनके कहे को बड़े साहब ही नहीं बल्कि इंडस्ट्री के लोग बड़े गौर से सुनते और मानते हैं।

आजकल तो इस इंडस्ट्री में भी छँटनी चल रही है। लोगों की नौकरियाँ जा रही हैं। मार्केट में मंदी का असर मध्यमवर्गीय परिवारों के लिए भस्मासुर बन गया है। यहाँ भी कामकाज को लेकर ऑफिस का माहौल गर्म ही रहता है और ऊपर से साहबों के ये निजी लफड़े। वातावरण हमेशा गर्म रहता है। गर्मी उस दिन चरम पर पहुँच गयी जब बड़े साहब की पत्नी ने ऑफिस में आकर सबके सामने तमाशा किया था। न आगे देखा न पीछे, ताव में, लिफ्ट से निकल कर दनादन सीधे केबिन में घुस गई और साहब की पीए सरला के साथ गाली-गलौच करने लगी।

सभ्य घर की महिलाएँ इतनी असभ्य भी हो सकती हैं पहली बार जाना था। यह भी सच है कि बात जब अस्मिता की रक्षा की हो तो इंसान कुछ भी करने की हद तक जा सकता है।

विषय अगर चटपटा हो तो उसे क्यों कर कोई अनदेखा करे? कौन सही-कौन गलत, इसकी विवेचना मिर्च मसाले लगा-लगा कर अब तक की जा रही है। बड़े साहब जो हमेशा अपने स्टाफ पर हेकड़ी जमाए फिरते थे, पत्नी के सामने...। मैंने उस वक्त सरला की ओर देखा था। किस तरह से सफेद जर्द चेहरे पर दर्द की पीड़ाएँ उभर आई थीं। कहाँ ये चौबीस-पच्चीस वर्ष की कविता सी मधुर सरला, कहाँ बेढब, थुलथुले पचास साल के प्रौढ़ बड़े साहब। बेकसूर होते हुए भी बेचारी प्रश्न चिह्न सी कटघरे में खड़ी कर दी गई थी।

याद आया कि उसने भी तो इस पोस्ट के लिए इंटरव्यू दिया था। लेकिन उसकी जगह सरला चुन ली गई थी। बाद में मिताली दी के कारण यह नौकरी मिली थी। उस दिन के तमाशे और सरला को अपमानजनक स्थिति में देख मन ही मन बुदबुदाई कि ऐसी नौकरी से तो बेरोजगारी भली। अच्छी तनख्वाह वाली पीए की नौकरी, हाथ से छूट जाने का मलाल उस घटना के बाद से जाता रहा था।

बड़े बाबू का इसके साथ कुछ चल रहा है इस बात का विश्वास इसलिए भी नहीं हुआ क्योंकि पहले से ही मिताली चक्रवर्ती से उनके रिश्ते की गहराई का भान था। पर सरला वैसी नहीं है। नाम के अनुरूप स्वभाव में सरल और वाणी से मधुर। वह जरूरतमंद है लेकिन आत्मसमर्पण करने वाली नहीं। उस लड़की को झूठ के पुलिंदों के नीचे दबते-घुटते महसूस किया था। हो न हो उसे यकीन है कि इस पुलिंदे को खड़ा करने में चपरासी गन्नूलाल का जरूर हाथ रहा होगा। सरला की तरफ मन खिंच गया। रोष की प्रचंड ज्वाला वेग से उठी जो विवशता के छीटों से मंद पड़ गयी थी।

खींसें निपोर कर फाइलों के अंदर चटकारी बातें दबा कर इधर से उधर, मिर्च लगाकर पहुँचाना गन्नूलाल का प्रिय शगल है। उसकी आँखें सियारों-सी हैं। वश चले तो आज ही उसकी परमानेंट छुट्टी कर दें। लेकिन अफसोस कि ऐसा नहीं कर सकती क्योंकि गन्नूलाल उसके आने के बहुत पहले से वहाँ काम कर रहा है। अनुभवी भी है। बात-बात में उसे यह कहकर टोक दिया करता है कि आप नहीं समझेंगी, मैं आपसे पहले यहाँ आया हूँ इसलिए ऑफिस के मसलों पर अधिक जानकारी रखता हूँ।

गन्नूलाल को मुँह लगाना मतलब खुद की फजीहत करवाना है। इसी मुँहजोरी के चक्कर में पिछले वर्ष घर के बाहर पालतू कुत्ते को घुमाने को लेकर पड़ोसी से उसकी बातचीत बढ़ गई थी। इस छोटी सी बात में झगड़ा इतना बढ़ा कि उसकी पत्नी पड़ोसियों के हत्थे चढ़ गई। विवाद गाली-गलौज से हाथापाई तक पहुँच गया था। गुंडों ने लाठी से धुन दिया था। अंदरूनी हिस्से में चोट लगने से अनियंत्रित रक्तस्राव हुआ, पत्नी की हालत अधिक बिगड़ गयी थी। गम्भीर अवस्था में अस्पताल पहुँचाया गया। पुलिस दरोगा, कोर्ट कचहरी सब हुआ। मार खाया सो अलग, केस भी हार गया था। इधर पत्नी का महीनों इलाज चला लेकिन वह फिर दुबारा बिस्तर से उठ नहीं पाई। पिछले महीने ही बेचारी स्वर्ग सिधार गई। सुना है गन्नूलाल की पत्नी अच्छे खानदान से थी। गन्नूलाल वहाँ ड्राइवर की नौकरी करता था। उसने घर से भागकर ड्राइवर के साथ शादी कर ली थी।

वह जब गन्नूलाल को देखती तो सोचती थी गन्नूलाल में क्या देखा होगा उस बड़े घर की लड़की ने। उसे ऐसी नामुराद लड़कियों पर चिढ़ छूटती थी जो बिना आगे-पीछे देखे, जो सामने आया, उसी से प्रेम कर लिया। ठीक है, प्रेम कर भी लिया तो क्या शादी करना जरूरी था। गन्नूलाल का छिछोरापन पत्नी के जाने के बाद से अधिक बढ़ गया था। मन झुँझुलाहट से भर गया। मेरा वश चले तो तुरंत इसे नौकरी से बेदखल करवा दूँ। उसे लगा क्यों किसी अन्य के बारे में इतना सोच रही है? किसी की निजी जिंदगी से उसे क्या, वैसे आज उसी गन्नूलाल की वजह से ऑफिस से जल्दी निकल पाई थी।

अकाउंट सेक्शन में कोई जरूरी काम भी नहीं था इसलिए समय से पंद्रह मिनट पहले निकल पाई। मिताली चक्रवर्ती को इंतजार नहीं करवाना चाहती। पता नहीं क्यों बुलाया है, क्या हुआ होगा? मन फिर भँवर में उलझ गया।

ऑफिस के बाहर मेन रोड पर सामने बस स्टॉप पर चौकस खड़ी ही हुई कि सामने आती यात्रियों से लदीफदी लाल रंग की स्टेट बस के रुकते ही वह झटके से अगले दरवाजे तक पहुँच गई। बस में चढ़ने की धक्का-मुक्की में पीछे से आती भीड़ ने अंदर की ओर ठेल कर उसे सीट तक पहुँचा दिया था। इस ठेलमठेल में उस खाली सीट तक जा पहुँची जिस पर बैठा लड़का हड़बड़ा कर अभी-अभी उठ खड़ा हुआ था। उसे इसी स्टाप पर उतरना था। खुद को भीड़ में रेड़ता हुआ बस से नीचे उतरने के उपक्रम में लगा हुआ था। उसकी हड़बड़ाहट ऐसी थी मानो उसका स्टाप पीछे छूट गया हो। वह तुरंत खाली सीट की ओर लपकी और निश्चिंत होकर बैठ गई। खिड़की से बाहर की तरफ देखने लगी।

'आप पाखी बैनर्जी हैं ना?' बगल में बैठे हुए यात्री ने उसकी ओर देखते हुए पूछा। वह चौंक उठी। उसने सहमति में सिर हिलाया और सोचने लगी। यह कौन हो सकता है? होगा कोई! वैसे भी ऑफिस में प्रतिदिन कितनों से मिलना होता है, होगा कोई एक उनमें से ही।

यात्री ने आगे बातचीत जारी रखने के लिए अपना परिचय देने की असफल कोशिश की। उसने खिड़की के बाहर देखते हुए उसे अनदेखा किया। इस अनदेखेपन को वह समझ चुका था। कलकत्ते के लोगों में समझ की बुद्धि तीव्र होती है।

मिताली चक्रवर्ती ने कई बार समझाया उसे कि आसपास के लोगों के बारे में जानने समझने की कोशिश किया करे, आँखें खुली रखा करे, लेकिन उसने कभी अनुसरण नहीं किया। वह अपने आप में सिमट कर रहने की आदी हो गई है। अब उसे खुद को फिर से नहीं बदलना था। कई बार खुद पर भी शक करने लगती, क्या वह सच में बदल गई है? उसने अपने आप से पूछा। कई चेहरे आँखों में तैर गए। बैडमिंटन, कोर्ट और पलाश दा।

जाने क्यों वह जिनसे भागती है वही अधिक पीछा करते हैं, बेचैनी देते हैं। याद नहीं करना चाहती। यादों में जख्मों के फूल हरे हो गए। पलाश दा के साथ के कारण उसने बहुत कष्ट भोगे हैं। प्रेम किया, अपनी पसंद से शादी की। चार साल साथ रहे, लेकिन अंतिम परिणाम अलग होना था। घर तो उसने ही छोड़ा था। दोनों ने शादी को सह जीवन के रूप में चुना था लेकिन पलाश दा को सह जीवन में सहचरी नहीं बल्कि अनुगामिनी चाहिए था जो उसे मंजूर नहीं था। उसने प्रेम किया था गुलामी नहीं। घर का आधा किराया देती थी। बाकी सभी खर्चों में भी बराबरी की हिस्सेदारी थी तो किस बात की अनुगामिनी बनती, वह भी जबरदस्ती। पलाश दा इतनी सी बात नहीं समझ पाए कि लड़की प्रेम करती है, बराबरी का अधिकार पाने के लिए। शादी के रूप में यह सह जीवन का चुनाव दोनों ने मिलकर किया था। असफलता का कारण वही बरसों पुरानी मान्यता कि स्त्री घर सँभालने के लिए है और पुरुष कमाने के लिए और दोनों के बीच का करार अचानक तकरार में बदल चुका था।

आते वक्त पलाश दा ने कहा था कि वे इंतजार करेंगे। लेकिन अब वापस उस जीवन में नहीं लौट सकती। यादों में बिछोह के समंदर ने उफान लिया। सर्दियों की शामें और लम्बी-लम्बी सड़कें। एक-दूसरे में खोए हुए, कितने पनीले सपने खुली आँखों से दोनों ने मिलकर देखे थे। सपनों की सतरंगी डोरी में बँधे दोनों ने लम्बी-लम्बी पींगे भरी थीं। उसके इर्दगिर्द सब बिखरा पड़ा है। वह चाह कर भी उन्हें समेट नहीं सकती है।

जीवन में गलतियाँ दोहराई नहीं जातीं बल्कि उनसे सीख लेनी होती है। उसने धैर्य से अंतर्मन में उठती लहरों को समेटना चाहा, पर असफल रही। यादों की नाव धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी।

पलाश दा। ऊँचे कद काठी के भरे-पूरे मर्द। गोरा रंग, घुँघराले बाल। उनके नाम में कैसा एक नशा है जिसके स्मरण मात्र से उसका मन हरसिंगार हो जाता है। अब भी रोम-रोम उनके नाम से पुलक उठता है। पलाश दा हैं ही ऐसे। जब पलाश दा उसके जीवन में आए थे तब उसे जीवन की समझ नहीं थी। थियेटर आर्टिस्ट पलाश दा। कैमरा के सामने रोमांटिज्म के पुतले। जब वह थिएटर जाती, नाटक पूरा होने तक वहीं रहती थी। पलाश दा के अलावा कुछ और सूझता ही नहीं था। एकदम पागल हो चुकी थी। पलाश दा गम्भीर और सिद्धांतवादी। सब अच्छा था। उनके सामीप्य में वह खुश थी। उसके मन पर पलाश दा ने अधिकार पूरी तरह से जमाया और जताया भी। तन को इन सबसे परे ही रखा था, यह इस रिश्ते का सबसे खूबसूरत पक्ष था।

यादों के झिलमिलाते रथ सड़क पर बस के पहिये के साथ दौड़ रहे थे कि तभी नज़रें सामने लालचंद कॉलेज के बोर्ड पर गयी और सहसा उसका ध्यान टूटा। श्याम बाजार जाने के लिए इस बस में सवार हुए करीब आधे घंटे से ऊपर हो गया है। उसने बाहर शोरूम के साइन बोर्ड को नोटिस किया तो एहसास हुआ कि वह गलत रूट की बस में बैठी है। तभी तो कहूँ कि भीड़ में आज एक भी चेहरा परिचित क्यों नहीं है। परिचित चेहरे रोजमर्रा के आवागमन में सहभागी एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा होते हैं। घड़ी के नौ बजते ही प्रतिदिन एक साथ बस स्टैंड पर खड़े रहना। एक ही रूट की बस में चढ़ना। फिर अपने-अपने स्टॉप के आने का इंतज़ार करना, मंजिल आते ही उतर जाना। जैसे कि कंधे पर नीला बैग टाँगे एक लड़के के साथ उस लड़की का रोज बस में चढ़ना। उनके बीच बातचीत का न होना। लेकिन एक-दूसरे से एकदम सट कर खड़े होना। एक-दूसरे से टकराना, फिर तुरंत ही झेंप कर सॉरी कहना।

नर्म मुलायम समय के पंखों पर उभरती प्रेम की तितलियाँ उड़ाती रहती और अपनी आँखों से दृश्य खींचते हुए पलकों की कूची से चित्र बनाया करती थी। रोज सुबह ऑफिस जाते हुए सबको महसूसते कब उसका स्टॉप आ जाता है, पता नहीं चलता। ठीक इसी तरह से घर लौटना भी होता है। 215 नम्बर की यह भरी हुई बस हावड़ा से माणिकतला तक रोज सवारी पहुँचाती।

पता नहीं आज कहाँ ध्यान था कि गलत बस में बैठ गयी। कलाई पर बँधी घड़ी पर नजर पड़ी, देर हो गई है। मन ही मन कुनमुनाई। एक दिन के लिए भी वह वक्त को मुट्ठी में नहीं पकड़ पाई। मिताली चक्रवर्ती उसके देर होने पर क्या सोच रही होंगी। शाम का वक्त बीत चुका था। रात की रोशनी से जगमगाता कोलकाता, नशे में मानो चूर हो गया था। ऊँची-ऊँची बिल्डिंग, सड़क के दोनों ओर मॉल, रेस्तरां, हॉकर्स कॉर्नर और बाजार, सब उसके ही मन की गति से चल रहे थे। उसे अगले स्टॉपेज पर उतरना होगा।

उसे याद है, इसी तालतला वाले रूट में पलाश दा के साथ पहली बार आई थी। उनके साथ सबसे पहले धर्मतल्ला गयी थी। देर तक विक्टोरिया के स्टैच्यू के सामने बैठे रहे थे दोनों। पलाश दा के जीवन में थियेटर पहले था और वह उसके बाद। उनके जीवन में वह दूसरे दर्जे पर है इस कारण मन दुश्चिंताओं में घिरा तो रहता ही था। उस दिन थियेटर से निकल कर विवेकानंद रोड पर फ्लाईओवर पर देर तक दोनों बात करते हुए पैदल चलते रहे। कब दूर तक निकल आए पता नहीं चला। वापस पैदल लौटना मुश्किल था सो उन्होंने टैक्सी बुक किया था। वह इससे पहले कभी किसी पुरुष के साथ अकेले टैक्सी में नहीं बैठी थी। उन्होंने जिस तरह के प्यार से स्वयं को अभिव्यक्त किया था, उसे अच्छा लगा था। उम्र ही ऐसी थी। ढाई घंटे की फिल्म, कैसे बीत गई, पता ही नहीं चला। जब तक फिल्म चलती रही वह नज़र झुकाए बैठी रही। वे कला समीक्षक भी थे। पलाश दा सीन की प्रस्तुतियों के बारे में बतलाते जाते, वह मंत्रमुग्ध हो सुनती जाती। यादों को गहरा धक्का लगा, बस झटके से रुकी। यात्रियों में शोर मचा। वह हड़बड़ा कर उतरने का उपक्रम करने लगी। फिर से एक बार कसमसाती भीड़ से गुजर कर गेट तक पहुँचना आसान नहीं था। अगले स्टॉप पर उतरना जरूरी था क्योंकि अब यहाँ से मिताली चक्रवर्ती के घर के लिए अलग-अलग दो बसों में चढ़ना होगा।

कोलकाता स्मार्ट सिटी सिर्फ एलीट वर्गों के लिए है। पुराने बाशिंदों के लिए सीलन भरी सन

उन्नीस सौ सत्तर के दशक की जिंदगी है जहाँ सँकरी गलियों में एक छोटी सी कार के आने भर से घंटों का जाम लग जाता है। सच कहूँ तो इतनी सँकरी गलियों में पैदल चलना भी दूभर है।

बस के दरवाजे पर झूलता कंडक्टर अचानक जोर-जोर से चिल्लाया, 'उल्टाडांगा, उल्टाडांगा!' वह सीट छोड़ कर उठ खड़ी हुई। पर्स सँभाल, गेट की तरफ बढ़ी। उसे उतरने की जल्दी थी। बस कहीं आगे न बढ़ जाए, वह जोर से चिल्लाई, 'थाम रे बाबा थाम, अरे, उतरने तो दो!'

भीड़ में देह को घसीटती हुई किसी तरह वह गेट तक पहुँची। नीचे उतरते ही जान सांसत में आई। यहाँ से उसे श्याम बाजार जाने के लिए फिर से बस पकड़ना होगा। कोई खाली बस देखना होगा। तभी उसे एक अनचाहा स्पर्श ध्यान आया जिसे उसने बस से उतरते हुए महसूस किया था। भीड़ में उसके साथ कुछ ऐसा हुआ था जो नहीं होना चाहिए था। याद आते ही वह तिलमिला उठी। वह कर भी क्या सकती थी। स्त्री होने पर उसे एक बार फिर से ग्लानि हुई।

वह सड़क के दूसरी तरफ जाकर बस की राह ताकने लगी। मन हुआ टैक्सी कर ले। पर्स की सबसे छोटी जेब में हाथ डाल कर रुपए टटोलने लगी। मुड़े-तुड़े कुछ नोटों से अंदाजा लगाया और मायूस होकर फिर से दूर आती बस को देखने लगी। गेट के बाहर झूलती सवारियों को देख देह में झुरझुरी सी महसूस हुई। गलत मंशा रखने वालों को वह रोक क्यों नहीं पाती। खुद पर झुँझलाई। रोक तो वह पलाश दा को भी नहीं पाई थी। मृदुभाषी पलाश दा अचानक चिड़चिड़े रहने लगे थे। दरअसल वे अपने सिद्धांतों की रक्षा करते-करते हार गए थे। नशा करने लगे थे। उसने रोकने की कोशिश की पर वह हार गई। अंततः उसने दूरी बनाना शुरू कर दिया था।

धीरे-धीरे पलाश दा जिद्दी होते गए। अपनी बात मनवा लेने की जिद, हदों के पार निकल जाना। उस दिन जब थियेटर में लाइटमैन से विवाद बढ़ा, वे हाथापाई पर उतर आए थे। कला जगत का काला पक्ष मुनाफे के लिए निर्माता का अपना गणितीय दृष्टिकोण है कि जो बिकेगा वही दिखेगा। सभी वर्गों को ध्यान में रखकर निर्माता को फिल्म बेचने योग्य मसालेदार बनाना था और पलाश दा को मसालों से मतलब नहीं था बल्कि वे मसलों को केंद्र में रखकर काम करना चाहते थे। मनहूसियत से भरे वे दिन थे। जिंदगी तो उनकी रुपहले परदे से ही जुड़ी थी फिर भी फिल्म और थियेटर की दुनिया की राजनीति उन्हें रास नहीं आई। विपरीत परिस्थितियों ने ऐसा शिकंजा कसा, अंततः उन्हें सब छोड़ने पर विवश कर ही दिया था। उनका यह फैसला खुदकुशी करने से कम नहीं था।

गम्भीर, सिद्धांतवादी पलाश दा को कोलकाता ने भीड़ का हिस्सा बनने पर मजबूर कर दिया था। पलाश दा और भीड़! हाँ, वही भीड़ जो जड़ होती है। उसके जीवन को भीड़ ने ही प्रभावित किया था। सामाजिक नियमों की भीड़, बस की भीड़, रंगकर्म से जुड़े दोहरे चरित्रों की भीड़। दोहन कोमलता का ही होता है। चाहे पलाश दा हों या स्त्री के रूप में वह स्वयं।

वास्तविकता तो यह है कि अनचाहे स्पर्श से स्त्री नहीं लुटती, स्त्री लुटती है अपनों के छल और कपट से। यह छल-कपट डकैती की श्रेणी में आता है और ऐसी डकैती भावनात्मक लगाव रखने वालों के हाथों होती है। पलाश दा ने प्रेम का वास्ता देकर विश्वास लूटा था। उसने पलाश दा को उस मारवाड़ी लड़की के साथ उसी विवेकानंद रोड पर हाथों में हाथ डालकर घूमते हुए देखा था जहाँ कभी वे दोनों वक्त

बिताया करते थे। उसी दिन पहली बार लुट जाने का एहसास हुआ था। मन फिर से कसैला हो उठा। वह अंदर तक तिलमिला उठी। बसों में गुजरती जिंदगी, इस बस से उस बस। इस गली से उस गली तक, इस मोड़ से उस मोड़ तक, अब वह भीड़ में भी तनहा है।

मिताली चक्रवर्ती का घर आ चुका था। गेट खोलकर जैसे ही अंदर जाने लगी कि विंड चाइम्स की मीठी आवाज गूँजने लगी।

'आओ, बड़ी देर कर दी।'

'हाँ दी, बस में आज बड़ी भीड़ थी।'

'तुम बैठो, मैं चाय चढ़ा कर आती हूँ।'

इस बार पूरे सात महीने बाद आई थी। सामने दीवार पर लगी ये जयपुर पेंटिंग्स तो नई लगाई गयी हैं। यहाँ पहले सरस्वती जी की बड़ी तस्वीर हुआ करती थी। वह कमरे में जमे सामानों पर नजरें फिराने लगी।

मिताली चक्रवर्ती का बंगला, आखिर आलीशान क्यों न हो? इसके लिए उन्होंने बहुत मेहनत की है। जब मिताली चक्रवर्ती को पहली बार देखा था मन पुलक उठा था। ऊँचा कद, गोरी छरहरी काया, हल्के आसमानी रंग की बालूचेरी कॉटन सिल्क की साड़ी में उनका गरिमामय व्यक्तित्व और अधिक प्रभावित करने वाला था।

तब नहीं सोचा था कि एक दिन वह उनके करीबियों में गिनी जाएगी। उसके पारा में सार्वजनिक काली पूजा के अनुष्ठान की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई है। लोग कोलकाता के दूरस्थ इलाकों से पूजा देखने आया करते हैं। सात दिन लगातार सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित होते हैं। उस वर्ष दुर्गापूजा के पहले दिन सांस्कृतिक समारोह के उद्घाटन में फीता मिताली चक्रवर्ती ने ही काटा था।

वह दूर दर्शकों में बैठी उन्हें निहारती रही थी। मिताली चक्रवर्ती गायन में भी अव्वल दर्जे की हैं। रूना लैला के साथ मंच पर ऐसा समां बाँधा था कि कई महीनों तक मीडिया की चर्चा के केंद्र में रहीं। वैसे तो अपनी फिल्मों की सफलता से वह चर्चा में रहती ही थीं। जब वह नौकरी की तलाश में थी तब कॉर्नर के मकान में रहने वाले उसके पड़ोसी फेलू दा ने उसे कहा था कि तुम इतना अच्छा लिखती हो, कभी मिताली चक्रवर्ती से मिलो, अगर वे तुम्हारे लिखे को पढ़ेंगी तो अवश्य तुम्हें काम देंगी।

वह बड़ी हिम्मत करके गई भी थी मिलने, लेकिन वे उस वक्त विदेश टूर पर थीं। उस दिन अपनी फाइल वहीं जमा करवा कर आ गई और इस बात को भूल भी गई। करीब महीने भर बाद मिताली चक्रवर्ती के स्टाफ का फोन आया कि मैडम आपसे मिलना चाहती हैं।

मिताली चक्रवर्ती के कारण उसे सीरियल में स्क्रिप्ट लिखने का मौका मिला था। वक्त पर पेमेंट भी हुआ लेकिन उसका इतने कम में कुछ नहीं होने वाला है, यह सोचकर उसने मिताली चक्रवर्ती से अनुरोध किया था कि वह परमानेंट काम करना चाहती है। उन्होंने तात्कालिक रूप से एक इंटरव्यू देने को कहा और ऑफिस में नौकरी पर रखवा दिया था।

उसके जैसे अनेक लोग हैं जिन्हें मिताली चक्रवर्ती ने काम दिलवाया है। रोजगार के साधनों का सृजन करना उनके लिए बड़ी बात नहीं थी। इतने परिवारों की पालन-पोषण देने वाली कर्मचारियों को वे

मदीना कहती थीं। वे इसे हज पर जाने जैसा पुण्य का काम मानती थीं। लेकिन आज इस तरह से उसका आकुल होना चिन्ता का विषय था। जरा ही देर में उदासीन चेहरा लिए वे चाय की दो प्याली ट्रे में रखकर लौटीं।

'इस वक्त आप अकेली घर में हैं, सब कहाँ गए?'

'दीघा गए हैं घूमने। देखो न, मिन्नी भी जिद करके साथ चली गई है।' मिताली चक्रवर्ती की आँखों में बिरानगी देखी तो चौंक उठी। ऐसी स्थिति में वह जा सकती हैं, यह सोच से परे की बात थी। विधाता की नजर में राजा रंक एक समान ही होता है, उसे एहसास हुआ।

'अच्छा है न, अब आपको आराम मिल जाएगा।' उसने मिताली चक्रवर्ती की जगह खुद को आश्वस्त किया।

'इस जन्म में आराम कहाँ पाखी।' वे अचानक से गम्भीर हो गईं। उनके स्वर में व्यथा झलक रही थी। वह एकटक उन्हें देखती रही। लगभग पचास वर्ष की आयु होगी लेकिन चेहरे पर चमक नवयौवना जैसी। जब वह उनको नहीं जानती थी तब बात दूसरी थी। उनके बारे में दूसरों की तरह उसने भी कयास लगाए थे कि वे अकेली रहती हैं तो शायद...। शूटिंग के दौरान उनकी बातों में हड़बड़ाहट से लगता था कि वे अस्त-व्यस्त दिनचर्या जीती होंगी। लेकिन जब उनके करीब आई तो जाना कि वास्तव में उलट थीं। बिंदास, बेबाक, बुद्धिमत्ति पुस्तक और पात्रों के सहारे जीने वाली मिताली चक्रवर्ती को नए सिरे से जाना था। भाई-भाभी और माँ, सब लोग उनके आसपास, कभी अकेले रही नहीं, वह अपने परिवार के साथ ही हमेशा से रहती थी। भाई-भाभी नि:संतान थे और आजन्म शादी न करने पर अडिग। बाद में उन्होंने अनाथालय में लिखा-पढ़ी कर, एक बच्ची मिन्नी को गोद लिया था जो उन्हें माँ और उनकी भाभी को भाभी माँ कहकर पुकारती है।

उसे इतना ही समझ में आया कि मिताली चक्रवर्ती अपने बनाए उसूलों पर अपने हिस्से की पूरी जिंदगी जीने को ही महत्व देती हैं।

'मैं संन्यास लेना चाहती हूँ।'

प्रतिकूल आवाज सुनकर मैं चौंकी। 'क्यों?'

'बहुत काम कर लिया, अब यात्रा पर जाना चाहती हूँ।'

'कौन सी यात्रा?' उसने घबराकर पूछा।

'कैलाश मानसरोवर।'

'और मिन्नी का दायित्व?'

'वह तो भैया को अधिक मानती है। उन्हीं के नजदीक रहती है। दरअसल मिन्नी को मुझसे अधिक पिता अच्छे लगने लगे हैं।'

'यह तो अच्छी बात है। फिर किस बात की चिंता, आप अगर इजाजत दें तो मैं भी आपके साथ आना चाहूँगी।'

'मेरे साथ आना चाहती हो, यह अच्छी बात तो है लेकिन इतना सब किसे सौंप कर जाऊँ?'

'आपके पास इतनी बड़ी टीम तो है।'

‘टीम नहीं है। वे सब बस नौकरी कर रहे हैं। उनको जितना कहती हूँ उतना ही करते हैं।’

‘ओह।’

‘तुम पर भरोसा करना चाहती हूँ। तुम्हें अपना सारा काम सौंपना चाहती हूँ।’

‘मैं भरोसे के लायक नहीं हूँ मिताली दी। मुझसे नहीं हो पाएगा। इन चीजों में मेरी जानकारी भी कम है।’

‘पलाश से बात हो गई है। वह तुम्हारी मदद करेगा।’

‘पलाश दा!’ उसे झटका लगा।

‘नहीं, नहीं! उनके साथ मेरा सब खत्म है, आप जानती तो हैं। मुझसे नहीं होगा। नहीं कर पाऊँगी।’ आँखों में बेबसी उतर आई। वह याचना भरे स्वर में बोली तो जवाब मिला, ‘होगा, सब कर सकती हो। कल ऑफिस से छुट्टी ले लेना। पलाश के साथ तुम्हारी एक मीटिंग रख लेते हैं। मैं साथ रहूँगी। वह तुम्हें अच्छे से समझा देगा।’ मुस्कुराते हुए मिताली दी ने कहा तो ऐसा लगा मानो वे पहले से ही सब तय कर चुकी थीं।

‘पलाश दा से मेरी नहीं पटती है, ऐसे में काम कैसे कर पाएँगे हम।’ वह चिंता के मारे दुर्बलता का अनुभव करने लगी। ऐसा लगा जैसे कि वह बीमार पड़ गई हो।

‘पलाश पिछले छः महीने से मेरे साथ काम कर रहा है। अधिकांश समय यहीं बीतता है उसका। मैंने महसूस किया है कि वह तुम्हें बहुत मानता है।’

‘रहने दीजिए, उसका सच आप नहीं जानतीं। मैंने उनके साथ रह कर करीब से देखा है।’ कहते हुए मेरे होंठ काँपने लगे।

काफी देर तक वहाँ चुप्पी छाई रही। मुझे लगा कि मैंने कुछ अधिक ही महत्व दे दिया है इस बात को। मुझे धैर्य रखकर बात करना चाहिए था।

‘एक बार और करीब से देखने की कोशिश करो।’ उन्होंने समझाने की कोशिश की।

‘मैंने करीब से जाना है। उसका सब आँखों से देखा है।’

‘कभी-कभी आँखों देखा भी गलत साबित होता है। वह अच्छा इंसान है। उसने मूक-बधिर गीता की भी मदद की है।’

‘कौन गीता?’

‘वही, जिसे तुमने उसके साथ देखा था।’

वह और कुछ नहीं कह पाई। शायद मिताली चक्रवर्ती सही कह रही हैं। इस वक्त जाने ऐसा क्या हुआ कि पलाश दा की एक भी बुराई याद नहीं कर पाई जिसका वास्ता देकर वह सामने बैठी मिताली चक्रवर्ती को समझाने की कोशिश करती। शायद गलती तो उससे भी हुई थी। निर्णय-अनिर्णय के बीच यह कैसा क्षण था। फिर से वक्त स्वर्ण हिरण था और वह सीता। मान-सम्मान दाँव पर लगा कर उसके पीछे भागी थी। इस रिश्ते में सिवाय हताशा के कुछ भी नहीं पाया था। वह जिद्दी नहीं थी, आत्मसम्मान की आकांक्षा रखती थी। भौतिकता की सतह पर खड़ी वह चारों ओर से घिरी द्वंद्व की दीवारों पर सिर पटकती। अब अपना कहने को कुछ भी तो नहीं था।

'समझने की कोशिश करो पाखी। वक्त कभी एक जैसा नहीं रहता है। इंसान परिस्थितियों से निरंतर कुछ न कुछ सीखता रहता है। पलाश बहुत बदल गया है अब तुम भी बदलो। अपने को खोकर ही अपने को पाया जा सकता है।'

उठकर सामने की टेबल से एक फाइल उठा लाई। 'इसे घर लेकर जाओ। पूरा पढ़ना और कल साथ में लेकर आना।'

'इसमें मेरी जिम्मेदारी क्या होगी? क्या काम करना होगा मुझे।'

'प्रोडक्शन हाउस तुम्हारे नाम कर रही हूँ। ये सब कर्मचारी अब से तुम्हारे लिए, तुम्हारे कहे अनुसार काम करेंगे,... पलाश भी।'

'पलाश दा मेरे अंडर में काम नहीं कर सकते। सब बिखर जाएगा मुझसे दी। मुझमें आप जैसी न काबिलियत है न ही प्रतिभा।'

'कल से तुम मुझे असिस्ट करोगी। जाने से पहले मैं तुम्हें प्रशिक्षित कर जाऊँगी।' उनकी आवाज में दृढ़ता थी। 'तुम्हारे ऑफिस में भिजवाने के लिए मैंने इस्तीफा पत्र तैयार करवा कर लिफाफे में रख दिया है। तुम हस्ताक्षर कर दो। कल मैं उनसे मिलने भी जा रही हूँ।'

'किनसे?'

'तुम्हारे ऑफिस के बड़े साहब से।' कहते हुए उनके गाल एक दम से लाल हो गए। प्यार का रंग लाल क्यों होता है यह बात समझ में आई।

प्रेम में विश्वास की बेल को सींचना पड़ता है तभी वह पुष्पित और पल्लवित होती है। पलाश दा उसके जीवन का सबसे कठोर और जटिल तप हैं। चलते-चलते ठिठक कर उसने आकाश की ओर गहरी नजरों से देखा मानो उसकी गहराई नाप रही हो।

सम्पर्क : भोपाल (म.प्र.)
मो. 9575465147

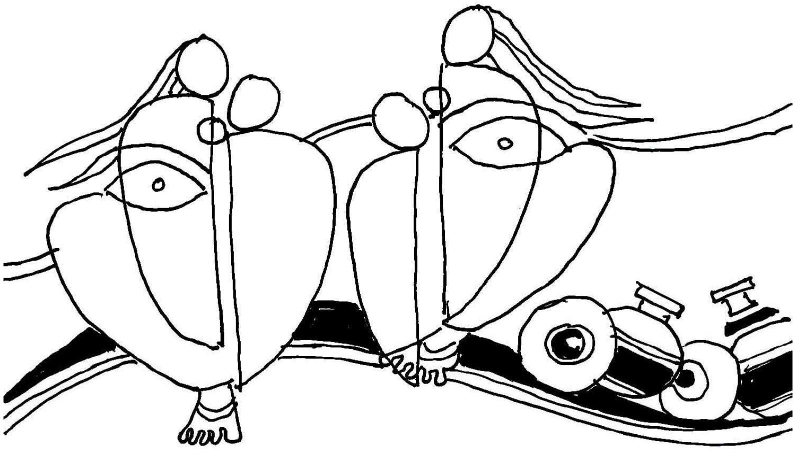

गायत्री यादव

मेहतरानी अम्मा

'अरे! अरे! ये क्या कर रही है? चाय के कप में दूर से चाय डाल, और हाँ वो रोटी भी लेते आना, बाई जी को देने के लिए रखी थी।' सीमा की माँ ने जोर से आवाज़ लगाई सीमा ने सँभलते हुए चाय के गिलास को पकड़ा और दूर से ही सारी चाय उड़ेल दी, दौड़ कर घर में फिर वापस चली गई, रोटी लाने के लिए।

सीमा को तब पता नहीं था कि जातिवाद की पुरानी परंपरा कितनी जटिल है। छुआछूत की परिभाषा क्या होती है? क्यों लोग सामान्य से दिखने वाले इन कुछ लोगों को बाहर बिठाते हैं, चाय पानी दूर से देते हैं। सीमा और उसका परिवार किराये के मकान में रहता था। मकान मालिक और किरायदारों के लिए साझा शौचालय घरों से बीस पच्चीस कदम दूर बने हुए थे। उसी बगीचे में सप्ताह में दो बार उसकी सफ़ाई करने के लिए एक अम्मा आया करती थीं। वे एक उम्रदराज महिला थीं, जब भी आतीं साथ में एक झाड़ू और बाँस की टोकरी साथ में होती। उनके झुर्रीदार चेहरे पर सदा मुस्कान रहा करती। आते ही आवाज़ देतीं जिसकी भी बारी हो पानी डालने आ जाओ। सभी किरायदारों को बारी-बारी से पानी ले जा कर शौचालय की सफाई करवाने का जिम्मा सौंपा गया था। बगीचे में स्त्रियाँ अपने सुख-दुख या शारीरिक परेशानी भी साझा कर लिया करती थीं, और वे एक ममतामयी माँ की तरह सबसे व्यवहार करती थीं।

परंतु सीमा की माँ से उनका एक अलग प्रकार का स्नेह होता था। मेहतरानी अम्मा काम ख़त्म करके दालान में दूर आकर बैठ जातीं, गाँव-देस के हाल-चाल पूछतीं, बच्चों की पढ़ाई और भैया की नौकरी और तबियत के बारे में पूछतीं। जब वे आ बैठतीं तो सीमा की माँ चाय बना लाती। जिस दिन अम्मा के आने का दिन होता वे उनके लिए रोटी बना लिया करती थीं। अम्मा के आँचल में रोटी डालतीं तो सब्जी अलग देतीं, या फिर गुड़ की डली दे देतीं। कभी भी केवल रोटी किसी को ना देतीं। अम्मा रोटी लेकर ढेरों आशीर्वाद देतीं, सदा सुहागन रहो या जोड़ी बनी रहे, ऐसा आशीर्वाद दिया करतीं।

आज अड़तीस बरस के बाद अचानक मेहतरानी अम्मा का चेहरा सीमा की आँखों के सामने आ गया। उसने एक नज़र क्लास रूम में पढ़ रहे बच्चों की ओर डाली यहाँ अलग-अलग जाति धर्म के बच्चे एक साथ बैठे हैं। वह छुआछूत, अस्पृश्यता, जातिवाद के विषयों को अब बड़ी सहजता के साथ समझाती है। मंदिर में कोई बड़ा-छोटा नहीं है। यहाँ सब समान हैं। जाति समाज का कोई भेद भाव नहीं है। पर आज मन में एक खेद है। काश! उस समय वे मेहतरानी अम्मा को घर में बिठा कर चाय पिला पातीं और सम्मान पूर्वक भोजन करवा पातीं।

सम्पर्क : महू (म.प्र.)
मो. 9977130234

सनातन कुमार वाजपेयी

उसूल

समीर के पिता श्यामलाल का बचपन अत्यन्त कठिनाइयों में बीता था। माँ सुभद्रा ने उन्हें दूसरों के घरों में मजदूरी कर मैट्रिक तक पढ़ाया था। इसलिये तो वे अत्यन्त ईमानदार एवं संवेदनशील थे।

मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त वे एक तहसील कार्यालय में लिपिक के पद पर पदस्थ हो गये थे। अन्य लिपिकगण कार्यालय में आने वाले लोगों को बार-बार भटकाया करते। उनसे कुछ ले-देकर ही उनके कामों में हाथ लगाते। किन्तु श्यामलाल तुरन्त उनके काम निपटा दिया करते। इसलिये सब लोग उनकी ईमानदारी पर अत्यन्त खुश रहते एवं उनकी मदद करने के लिये सदैव तैयार रहा करते। समीर की पत्नी बुधिया भी उनके अनुकूल थी। नित्य भगवान शिव के मंदिर में जाती। उन्हें अत्यन्त श्रद्धा से प्रणाम किया करती।

एक बार अन्य लिपिकों की पत्नियों के ठाट-बाट देखकर बुधिया ने शिकायत के लहजे में श्यामलाल से कहा भी था कि हम लोग आखिर क्यों इस प्रकार तंगी की जिन्दगी जी रहे हैं? इस पर श्यामलाल ने कहा था देखो बुधिया, अन्य लोग जो कुछ कर रहे हैं मैं वह सब कभी नहीं कर पाऊँगा। मुझे अपनी इस तंगी की जिन्दगी में ही सुख, शान्ति एवं गर्व की अनुभूति होती है। अब तुम्हीं बताओ। मैं क्या करूँ? मुझे दूसरों के रक्त से रंगे सीने से अपने घर को नहीं सजाना है।

उनकी ये बातें सुनकर बुधिया चुप होकर रह गई थी। श्यामलाल का एक बेटा था। जिसका नाम समीर था।

समीर इंजीनियरिंग के अन्तिम वर्ष की पढ़ाई कर रहा था। पढ़ने में अत्यन्त तेज था। सभी कक्षाओं को उसने प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान लेकर उत्तीर्ण किया था। वह अपने पिता के संस्कारों से पूरी तरह संस्कारित था। ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा एवं नैतिकता उसमें कूट-कूट कर भरी थी।

साथी छात्रों एवं अध्यापकों के प्रति उसका अत्यन्त सम्मानजनक एवं प्रेममय व्यवहार था। इसलिये वे सभी उसको हृदय से चाहते थे।

एक दिन उसके पिता श्यामलाल अपनी साइकिल पर प्रात: दस बजे अपने कार्यालय की ओर ड्यूटी पर जा रहे थे। तभी पीछे से अत्यन्त तेज रफ्तार से आने वाले ट्रक ने उनकी साइकिल में जोरदार टक्कर मारी, वे उछलकर दूर जा गिरे। तुरन्त उनका प्राणान्त हो गया। पुलिस को सूचना दी गई। पी.एम.

के उपरान्त शव घरवालों को सौंप दिया गया। सभी ने मिलकर उनका अन्तिम संस्कार करा दिया।

इस हादसे से सभी लोग अत्यन्त दुखी हो गये। माँ बुधिया का तो बहुत बुरा हाल था। उसकी आँखों से आँसू थम ही नहीं पा रहे थे। समीर तो एकदम सदमे में आकर गुमसुम रहने लगा।

बस्ती के लोगों ने समीर को समझाते हुये कहा- देखो बेटे, तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। हम सब लोग तुम्हारे साथ हैं। तुम हम सभी लोगों के होनहार बेटे हो। इन सब बातों के बाद भी समीर सदमे से नहीं उबर नहीं पा रहा था। उसने कॉलेज जाना भी बन्द कर दिया।

एक दिन उसके घर कुछ साथी छात्र एवं अध्यापकगण आये। सभी काफी देर तक समीर से हल्की-फुल्की बातें करके उसे सांत्वना देते रहे। अन्त में सभी ने उसे तैयार होने को कहा और साथ में कॉलेज ले गए।

धीरे-धीरे समीर सदमे से उबरने लगा। वह प्रतिदिन कॉलेज जाने लगा। परीक्षा की तैयारी में जुट गया।

बस्ती के कुछ संवेदनशील लोग उसकी पढ़ाई एवं परिवार के भोजनादि की व्यवस्था में सहयोग कर देते। समीर ने अन्तिम वर्ष की परीक्षा अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण की। जल्दी ही उसे प्रदेश के लोक कर्म विभाग में इंजीनियर की नौकरी मिल गई।

यह सब देखकर बुधिया की सभी चिन्तायें दूर हो गईं। आज समीर को अपने कार्यालय में जाकर पद का प्रभार ग्रहण करना था। उसने प्रातः काल स्नान किया। भगवान शिवलिंग पर जल एवं बेलपत्र चढ़ाये। इसके बाद अपने पिता की तस्वीर के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। मन ही मन उसने संकल्प किया कि पिताजी, मैं आपके द्वारा प्रशस्त सत्य एवं ईमानदारी के मार्ग का अनुसरण करने का संकल्प लेता हूँ। आप मुझे शक्ति प्रदान करें कि, मैं अपने मार्ग से कभी भी विचलित न हो सकूँ। इसे उपरान्त माँ बुधिया के चरण स्पर्श कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। इसके बाद कार्यालय जाने की तैयारी की।

समय पर कार्यालय में पहुँचकर उसने अपना पद पर प्रभार ग्रहण किया। कार्यालय में पदस्थ अन्य सभी साथियों ने उसका अभिनन्दन किया। समीर ने सभी को अभिवादन किया।

अन्य साथी क्या कर रहे हैं, इसकी ओर समीर का कोई ध्यान न रहता। वह अत्यन्त निष्ठा, ईमानदारी एवं विनम्रता के साथ सभी के कामों का निपटारा कर दिया करता। सभी लोग उसकी त्वरित सेवाओं से अत्यन्त सन्तुष्ट और प्रसन्न रहा करते। हृदय से उसके प्रति सम्मान का भाव रखते।

इसी बीच एक अत्यन्त सम्भ्रान्त परिवार की सुन्दर एवं सुशील कन्या शीला देवी के साथ उसका विवाह संपन्न हो गया। शीला देवी एक शासकीय अस्पताल में डॉक्टर थी। बुधिया उस कन्या को अपनी पुत्रवधु के रूप में पाकर अत्यन्त प्रसन्न थी। शीला देवी प्रतिदिन प्रातः काल स्नान करके भगवान शिव का पूजन करती। इसके बाद समय पर भोजन तैयार कर अपनी सास बुधिया एवं समीर को भोजन कराती। तदुपरांत स्वयं भोजन करके अस्पताल जाने को तैयार होती। माँ बुधिया के चरण स्पर्श कर चिकित्सालय में पहुँच अत्यन्त प्रेम से रोगियों की सेवा में संलग्न हो जाया करती। उनके प्रेमपूर्ण व्यवहार से रोगी अत्यन्त संतुष्ट एवं प्रसन्न रहा करते। शीला देवी का प्रतिदिन का यही क्रम था।

समीर से मिलने के लिये बस्ती के गणयमान्य लोग आते रहते। सभी लोग अत्यन्त आदर से उससे बातें किया करते। समीर पूर्ण ईमानदारी से अपनी नौकरी कर रहा था।

एक दिन उसके कार्यालय में एक बड़े ठेकेदार महोदय ने प्रवेश किया। उन्होंने एक बहुत बड़े मार्ग के निर्माण हेतु एक करोड़ में ठेका लिया था। समीर के हाथ में एक लिफाफा थमाते हुये वे बोले कि आप मुझे कार्य पूर्णता का प्रमाण पत्र दे दीजिये।

इस पर समीर ने लिफाफा उन्हें वापिस करते हुये उनसे कहा कि, बिना उस मार्ग का परीक्षण कराये मैं आपको कार्य पूर्णता का प्रमाण-पत्र भला कैसे दे दूँ।

कुछ समय के अंतराल में उस मार्ग का परीक्षण कराने में पाया गया कि, मार्ग के निर्माण में अत्यन्त घटिया सामग्री का उपयोग किया गया है। वह मार्ग कुछ दिनों के उपरान्त ही टूट-फूटकर गड्ढों से युक्त हो जावेगा। समीर ने उन्हें पूर्णता प्रमाण-पत्र देने से पूरी तरह मना कर दिया।

ठेकेदार प्रतिदिन उसके कार्यालय के चक्कर काटते। एक दिन अकेले में उन्होंने समीर से पूछा कि आप आखिर इसको पास करने के लिये कितनी रकम चाहते हैं। इस पर समीर ने दृढ़तापूर्वक उन्हें उत्तर दिया। देखिये ठेकेदार सा. आपने उसमें अत्यन्त घटिया सामग्री का उपयोग किया है। यह देश की जनता के प्रति महान धोखा है। मैं आपको उस मार्ग की पूर्णता का प्रमाण-पत्र किसी भी कीमत पर नहीं दे पाऊँगा। आप यहाँ से जाइये। मुझे व्यर्थ परेशान मत कीजिये।

ठेकेदार द्वारा बहुत बड़ी रकम विभागीय मंत्री जी को पहिले ही दी जा चुकी थी। अत: मंत्री जी भी ठेकेदार के पक्ष में थे। वे चाहते थे कि ठेकेदार को प्रमाण-पत्र दे दिया जाये। इसके लिये उन्होंने यहाँ-वहाँ से कुछ लोगों द्वारा समीर को इसका संकेत कराया। उस पर दबाव भी डलवाया। किन्तु समीर अपने स्थान से टस से मस होने को तैयार नहीं हुआ।

विभागीय मंत्री महोदय इस पर समीर से नाराज हो गये। ठेकेदार ने कुछ लोगों को पैसे के बल पर अपने पक्ष में लेकर समीर के विरुद्ध झूठी शिकायतें कराईं। इस पर मंत्री महोदय ने अपने प्रभाव से समीर को निलंबित कराते हुये उसके स्थान पर अन्य इंजीनियर की नियुक्ति कराकर उस ठेकेदार को प्रमाण-पत्र दिलवा दिया।

समीर इस पर भी तनिक भी विचलित नहीं हुआ। उसका दृढ़ विश्वास था कि चूँकि मैं सत्य के मार्ग पर हूँ। इसलिये अंत में विजय मेरी ही होगी।

ठीक दो माह बाद नये निर्वाचन हुये। जिसमें सत्तासीन दल की बुरी तरह पराजय हो गई। प्रदेश में दूसरे दल की सरकार का गठन हो गया।

समीर को ज्ञात हुआ कि, नई सरकार में विभागीय मंत्री महोदय अत्यन्त संस्कारित एवं ईमानदार व्यक्ति हैं। एक दिन समीर ने उनके कार्यालय में उपस्थित होकर अपने पूर्ण प्रकरण से उन्हें अवगत कराया।

मंत्री महोदय ने यहाँ वहाँ समाज के लोगों से विभाग के अधिकारियों एवं कर्मचारियों से जानकारी प्राप्त की। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि समीर एक अत्यन्त निष्ठावान और ईमानदार अधिकारी है। उस पर झूठे आरोप लगाकर उसे निलंबित किया गया है।

मंत्री महोदय द्वारा उसे निर्दोष प्रमाणित करते हुये अपने पद पर पूर्ववत सेवा करने का आदेश प्रदान करा दिया।

मार्ग निर्माण में अत्यन्त घटिया सामग्री के उपयोग किये जाने के कारण उस ठेकेदार के विरुद्ध न्यायालय में प्रकरण प्रस्तुत करा दिया गया। उस ठेकेदार के भविष्य में किसी भी शासकीय कार्य के ठेके देने में अयोग्य घोषित कर दिया गया।

समीर अपनी इस विजय पर अत्यन्त गर्वित था। इसका श्रेय वह अपने स्व. पिता श्री श्यामलाल के आशीषों को दे रहा था। समाज के सभी गण्मान्य नागरिकगण, कार्यालय अधिकारी और कर्मचारीगण उसका अभिनंदन करते हुये उस पर फूलों की वर्षा कर रहे थे।

सम्पर्क : *जबलपुर (म.प्र.)*
मो. 9993566139

बलराम अग्रवाल

तीसरा आदमी

उस टू टियर कोच में ज्यादा लोग नहीं थे। केबिन में तो और भी कम, छ: बर्थ पर सिर्फ दो। सबसे नीचे, आमने-सामने।

'कहाँ से हैं?' मास्क के पीछे से एक ने पूछा।

'कटिहार से।' मास्क के पीछे से ही दूसरे ने जवाब दिया।

'कहाँ जाएँगे?' पहले ने पूछा।

'दिल्ली।' दूसरे ने कहा।

'नौकरी में हैं?'

'नहीं।'

'बिजनेस में?'

'नहीं।'

'तब?'

'लॉकडाउन के दिनों में सब छूट गया।' उसने पीड़ा उड़ेलनी शुरू की, 'नौकरियाँ और काम-धंधे एक झटके में चौपट। किराए की कोठरी से बेदखल। मौत की आपाधापी से डरकर पैदल ही निकल लिए थे कटिहार के लिए। सोचा ही नहीं कि गाँव में रोजगार होता तो वहाँ से भागकर दिल्ली आते ही क्यों! गाँव में आज भी कुछ नहीं है, इसलिए...।'

'खेत-खलिहान तो होंगे?' पहले ने ज्ञान बघारा, 'उनमें बुवाई-कटाई... भराई, कुछ ना कुछ चलता ही रहता होगा?'

'यह 21वीं सदी है साहब!' दूसरे ने कड़ाई से अपना पक्ष रखा, 'जिस खेत को पहले 10 हल कई दिनों में जोतते थे, उसे अब एक ही ट्रैक्टर दिन भर में जोत डालता है।'

'कटाई, लदाई?' पहले ने पूछा।

'उसका भी यही हाल है।' दूसरे ने कहा, 'बुवाई-कटाई वगैरह के लिए एक से एक नई मशीन बाजार में आ चुकी हैं। दिहाड़ी मजदूरी के आधे से भी कम किराए पर वे मिल जाती हैं। मजदूरों की खपत

खत्म। उधर, मजदूर के घर, जितने बच्चे पहले पैदा होते थे, उतने ही अब भी होते हैं। मतलब यह कि काम करने वाले हाथ और उन्हें काटने वाली मशीनें, दोनों ही लगातार पैदा हो रहे हैं। इससे पलायन बढ़ गया है।'

'वह तो बढ़ेगा ही।' पहले के मुँह से निकला।

'नहीं बढ़ेगा।' दूसरे ने प्रतिवाद करते हुए सुझाया, 'संतुलन बनाना होगा।'

'कैसे?'

'उसके लिए साहब, या तो आदमी की पैदावार रोकनी होगी या फिर मशीन की!..'

'मशीन की ही रोकनी होगी!' पीछे की किसी बर्थ से उठकर एक साहब यह कहते हुए उन दोनों के निकट आ खड़े हुए। दमदार अंदाज में बोले, 'ऊपर वाले के निजाम में दखल का हक किसी भी इंसान को नहीं दिया जाएगा!'

दाँव पर देश

हुआ यों कि जंगल में लंबे समय से जो साजिश नीचे-नीचे सुलग लग रही थी, एकाएक ऊपर लपट आयी। सारे के सारे लोमड़ों ने शेर और लोमड़ियों ने शेरनी होने का ऐलान कर दिया। कहा कि जंगल के असली राजा वही हैं।

मूल शेर से पैदाइशी नफरत करने वाले गैंडा, हाथी, भैंसा, मगरमच्छ आदि ने जोर-जोर से उनकी जय-जयकार शुरू कर दी। जेब्रा, जिराफ, खरगोश और हिरण जैसे कुछ जानवर इस घटना से निस्पृह रहे। उनके लिए तो जैसे शेर वैसे लोमड़ और भेड़िए।

जय-जय कार के जवाब में शेर एक बार नहीं, अनेक बार दहाड़ा। कहा-'यह लोमड़ों की अपनी सोच नहीं है। शहर में बैठे 'आदमी' की जंगल में बिछायी बिसात है। इसमें फँसे तो मुझ समेत सब उसकी मुट्ठी में पहुँच जाएँगे। जंगल का तब वही राजा होगा। ये टुकड़खोर तो अब-जैसे टुकड़खोर ही रहेंगे। अकारण ईर्ष्या से बाज आओ मेरे बुद्धिमान दोस्तो। मात मुझे मत दो, शहर में बैठकर जंगल में शतरंज खेल रहे 'आदमी' की चालों को दो।'

सम्पर्क : दिल्ली (भारत)
मो. 8826499115

सतीश राठी

काला कानून

'तुम यह धरना क्यों दे रहे हो?'

'किसान को उसकी फसल की सही कीमत मिले, यही तो हमारी माँग है।'

'तो यह बात तो कानून में लिखी है।'

'हाँ! लिखी होगी। हमें नहीं पता। हमें तो बस इतना पता है कि यह कानून काले हैं। तो फिर इन्हें बनाने वालों के दिल भी काले होंगे।'

'लेकिन वह तो तुम्हारे हित का ही सोच कर इन कानूनों को बनाए हैं। तुम एक बार इनके हिसाब से चल कर तो देखो ना भाई।'

'ना! हमारे नेता जी ने जब बोल दिया कि यह काले कानून हैं, तो हैं। और फिर सही बात तो यह है कि, जितने दिन यहाँ हैं पेट भर कर तर माल मिल रहा है।'

फिर एक आँख मार कर बोला, 'दारू की व्यवस्था भी है। इतनी सारी बात के लिए तो सारे जमाने को काला कह सकते हैं।'

स्यापा

उनके स्यापा करने के दिन तो नहीं थे लेकिन वे प्रधानमंत्री का नाम ले लेकर स्यापा कर रही थीं। किसी ने उनसे पूछ ही लिया, 'पैर तो तुम्हारे कब्र में लटके हैं, फिर यह स्यापा क्यों?'

उन्होंने कहा, 'सच बताएँ! हमें तो इसके पैसे मिल रहे हैं। और हाँ! इससे उसकी तो उम्र बढ़ रही है।'

सम्पर्क : *इंदौर (म.प्र.)*

डॉ. गंगाप्रसाद बरसैंया

जीवन यात्रा का पूरा दस्तावेज है आत्मकथा : अटकते-भटकते

डॉ. श्यामसुंदर दुबे हिन्दी जगत का जाना-माना प्रतिष्ठित नाम है। वे स्वभाव और व्यवहार से मेरे आत्मीय तथा ज्ञान और रचना साधना की प्राप्ति से आदरणीय हैं, उम्र में मुझ से भले ही लगभग सात वर्ष छोटे हैं किन्तु रचनागत उपलब्धियों में वे बहुत आगे हैं। मेरे एक आत्मीय विद्वान कहा करते थे कि वयवृद्ध की अपेक्षा ज्ञानवृद्ध बड़ा होता है। डॉ. दुबे ने गद्य और पद्य को विविध विधाओं में लगभग चार दर्जन कृतियों का सृजन किया है। इन कृतियों ने उन्हें ख्याति के शिखर पर पहुँचाया है। इस समय उनकी आत्मकथा अटकते-भटकते मेरे हाथ में है जिसे मैंने दो दिन तक लगातार पढ़कर पूरा किया। इसे पढ़ने में मुझे जैसे उपन्यास पढ़ने का आनंद मिला। इसके कई पात्र और प्रसंग मेरे जाने-माने ही नहीं मेरे जीवन से भी मेल खाते हैं।

यह आत्मकथा हाथ में आते ही दुबे जी सामने उपस्थित होते से प्रतीत होते हैं। उनसे मिलना निर्मल सरोवर में स्नान और शीतल बयार, के साथ-साथ सार्शित होने का अनुभव कराता है। उनकी वाणी अंतर्मन को स्पर्श करने वाली है। डॉ. देवेन्द्र दीपक ने सहर्ष लिखा है कि 'दुबे जी कदकाठी से किसान, वेशभूषा से पंडित और वाणी से आचार्य हैं।' 'आत्मकथा' का शीर्षक पढ़ कर लगा कि वह अधूरा है। इस 'अटकते-भटकते' में 'बढ़ते हुए' और जुड़ना चाहिए। दुबे जी परिस्थितियों वश अटके-भटके भले हों, पर रुके नहीं। आज भी घर, में स्थिर होकर वे निरंतर गतिमान हैं। यह गतिमानता ही दुबे जी के जीवन का बड़ा गुण है। इसी ने उन्हें महिमा मंडित किया है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की पंक्ति है, 'जितने कष्ट कंटकों में हैं, जिसका जीवन सुमन खिला। गौरव गंध ही यत्र-तत्र सर्वत्र मिला।'

किसी भी व्यक्तित्व-कृतित्व के निर्माण में उसके संस्कारों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। ये संस्कार परिवार परिवेश, प्रभाव और सत्संग से बनते हैं। दुबे जी की जीवनी की कथा बड़ी दर्दनाक है। दादा-दादी को मजदूरी करके, भिक्षाटन करके जीवन यापन करना पड़ा। स्वयं पिता को अभावों के मध्य अपनी जीवनी विकसित करना पड़ी। उन्हें उपहास जनक स्थितियों में असम्मानजनक जीवन जीना पड़ा। स्वयं पिता को अभावों के मध्य अपनी जीवनी विकसित करना पड़ी। उन्हें उपहास जनक स्थितियों में

कृति : अटकते भटकते (आत्मकथा), लेखक : डॉ. श्याम सुंदर दुबे
प्रकाशक : यश प्रकाशन, नई दिल्ली, मूल्य - रुपये 599

असम्मानजनक जीवन जीना पड़ा। उन्हें बहिन के यहाँ रहते उसकी सास के ताने सुनने पड़े। रोटी और ज्ञान को पाने के लिए पिता को सब सहना पड़ा। जानवर चराना, रात को सेवकाई करना आदि। बाद में अपनी कर्मठता और अपने अध्यवसाय से उन्होंने पूजापाठ और पंडिताई से धनार्जित कर किसी तरह से गृहस्थी की गाड़ी को घसीटा फिर भी अभावों की छाया से परिवार मुक्त नहीं हो पाया। 'नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं।' दुबे जी ने यह रूप भले ही न देखा-भोगा हो पर प्रारंभिक जीवन में मुक्त नहीं हुए। उन्होंने पिता के मुख से दादा-दादी की दुःख गाथा सुनी थी। पिता के प्रारंभिक जीवन की यातना भी उन्होंने माता-पिता से जानी।

सुख-साधनों के अभावों ने दुबे जी को हताश-निराश नहीं किया, अपितु जूझने का हौसला दिया। वे पिता के साथ गाँव में मिट्टी खोदकर ईंट बनवाने में सहयोगी बनते हैं-घर के सारे कार्य करते हैं। पूजा-पाठ, कथा-वार्ता, करते हैं। मंदिर की कोठरी में रहकर स्वपाकी बनकर महंत की सेवकाई करके अपनी पढ़ाई जारी रखते हैं। तो यह उसी हौसले की देन है। काम करने परिश्रम करने और कठिनाइयों से जूझने की आदत और ताकत घर-परिवार के उसी परिवेश से मिली जो आगे चलकर उनके व्यक्तित्व-कृतित्व दोनों के निर्धारण में सहायक बनी। सागर विश्वविद्यालय एम.ए. करने के बाद भी उन्हें गाँव में अपनी गायों के लिए चारा काटने में कोई शर्म या हिचक नहीं। कोई भी उपाधि व्यक्ति को कर्म से विमुख नहीं करती है। बल्कि कर्मठ बनाती है। अज्ञेय द्वारा आयोजित वत्सल निधि शिविरों में दुबे जी की इसी कर्मठता ने उन्हें प्रतिभागियों में अपनी अच्छी छवि प्रस्तुत करने का अवसर दिया। वे अच्छे कार्यकर्ता के साथ अच्छे दृष्टा और अच्छे प्रस्तुतकर्ता भी हैं। शिविरों का जैसा वर्णन उन्होंने किया, छोटी-बड़ी चीजों का ध्यान रखा और लिखा, वह उसका परिचायक है। वृन्दावन और बरगीनगर का प्राकृतिक चित्रांकन आश्रम की भव्यता, सुस्वादु भोजन के साथ दोना-पत्तल का उल्लेख तथा अज्ञेय जी के बिस्किटों की चर्चा इसका प्रमाण है। उनकी याददाश्त अद्‌भुत है। आत्मकथा में इसके दर्शन पग-पग पर किए जा सकते हैं।

प्रत्येक मनुष्य की जीवन-यात्रा में उसका भाग्य और उसकी महत्त्वाकांक्षा की प्रभावी भूमिका होती है। दुबे जी आध्यात्मिक संस्कारों वाले व्यक्ति हैं। अपनी धुन के पक्के। हटा से दमोह, दमोह से सागर की शैक्षणिक यात्रा उनकी महत्त्वाकांक्षा का ही परिणाम है। विज्ञान से कला संकाय में आना भाग्य की बात है। दुबे भाग्य और सुयोग दोनों को मानते हैं। 'होइहिं सोई जो राम रचि राखा।' लेकिन यह मान्यता उन्हें निष्क्रिय या अकर्मण्य नहीं बनाती।

दुबे जी शालीन व्यक्ति हैं। वे आदर्शों और मर्यादाओं के पक्षधर हैं। वे कहीं उनका सीमोल्लंघन नहीं करते। किसी की निंदा करना उनके स्वभाव में नहीं है। वे ऐसे प्रसंगों से बचते हैं। सागर में विद्याध्ययन के दौरान वे विवादों में आने वाले अपने-पराये प्रसंगों से दूर रहे। यदि कहीं उनके साथ अप्रिय भी हुआ तो उसे सह लिया। न रोष व्यक्त किया न संबंध बिगाड़े। वे इसके दुष्परिणामों को जानते थे। उनकी यह गुरुता और गंभीरता उनके स्वभाव का एक विशिष्ट अंग है। अनुपस्थिति में भी निंदा-आलोचना नहीं की। जिससे संबंध बन गये, आजीवन उनका जैसे निर्वाह करने का प्रण ले लिया।

बुंदेलखंड की अपनी भूमि को छोड़कर सुदूर छत्तीसगढ़ के अम्बिकापुर पहुँचकर उन्होंने अपनी कर्मठता ज्ञानचर्या, शैक्षणिक शैली विद्वतापूर्ण अध्यापन और सद्‌व्यवहार से तेरह वर्ष का समय सम्मानपूर्वक

सक्रिय रहकर बिताया। यह सक्रियता महाविद्यालयीन शैक्षणिक तथा शैक्षणेत्तर गतिविधियों के साथ निरंतर अध्ययन और लेखन में भी बनी रही। सामाजिकता उनका स्वभाव है। जहाँ हैं वहाँ के जीवन प्रकृति आदि का परिचय पाना उनकी रुचि और जिज्ञासा का अंग है। वहाँ के सामाजिकों, साहित्यकारों अधिकारियों से उनके निकट के संबंध रहे। उन्होंने इनका उपयोग रचनात्मक कार्यों के लिए किया। प्रतिष्ठि साहित्यकार तक वहाँ कलेक्टर रहे। इन सबके साथ वे साहित्यिक सांस्कृतिक गतिविधियों में संलग्न रहे। लेखन प्रकाशन का क्रम बना रहा। अम्बिकापुर का समय उनकी प्रगति और उपलब्धियों का समय रहा। पारिवारिक, साहित्यक, शैक्षणिक, सामाजिक आदि सभी दृष्टियों से शिक्षकों और छात्रों की समस्याओं को कभी सूझ-बूझ से कभी दबंगई से निपटाया।

समाज में अच्छे-बुरे सभी तरह के लोग होते हैं। शैक्षणिक संस्थान इससे अछूते नहीं हैं। यहाँ भी कुछ शिक्षक ईर्ष्या-द्वेष वाले थे, जिनकी प्रकृति 'देख न सकहिं परायी विभूती।' वाली होती है और जो 'जे बिन काज दाहिने बाएँ' होते रहते हैं। यहाँ भी कुछ ऐसे जनों ने दुबे जी की छवि बिगाड़ने की चेष्टा की। पारिवारिक विग्रह की कुचेष्टा की, किन्तु दुबे जी की धवल छवि और चारित्रिक दृढ़ता के सामने वे सर्वथा विफल रहे। इस तरह की मानसिकता के लोग जौंक की तरह होते हैं जो निर्मल और समतल जल में भी वक्र होकर चलते हैं। 'चलहिं जौंक जिंमि वक्र गति, जद्यपि सलिल समान।' इनकी मानसिकता हिंसक होती है। इन्हें दूध नहीं रक्त पीना होता है। 'रुधिर पियहिं, पय नाहिं लगी पयोधर जौंक।'

हटा आकर परिवार की व्यवस्था, बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के साथ हटा में नव स्थापित कॉलेज को व्यवस्थित कर साधन संपन्न बनाना एक प्रतिष्ठित कॉलेज के रूप में उसे विकसित करना। निरंतर कक्षायें लेना, कॉलेज को पूरा समय देना, प्राचार्य के दायित्वों का वहन करना। इसके साथ ही पढ़ने-लिखने का श्रम जारी रखना उनकी कर्मठता के प्रमाण हैं। दमोह के कॉलेज के प्राचार्य बनकर वहाँ की व्यवस्था सुधारना, दबंग लड़कों से जूझना उनकी दृढ़ता के प्रमाण हैं।

दुबे जी का व्यक्तित्व लोक और शास्त्र का परंपरा और ईमानदारी का समन्वित रूप है। वे अपने जीवन-स्वभाव और कृतित्व की आधार भूमि और प्रेरणा लोक को ही मानते हैं। वे अपने वक्तव्यों में, कृतित्व में, जीवन-व्यापार में लोक को व्याप्त मानते हैं। उनके ललित निबंध, उनके गीत, उनकी कहानियाँ आदि लोक से संयुक्त हैं। यह लोक ही उन्हें लालित्य और आस्वाद्य प्रदान कराता है। वे स्वयं लिखते हैं- ''मेरी पक्षधरता लोक के प्रति रही है। लोक मेरे निबंधों में मेरी कविताओं में मेरी कथाओं में सदैव विद्यमान रहा है। स्पष्ट है कि लोक का संघर्ष, लोक के दुख-दर्द लोक की विषमताएँ मेरी रचनाओं में आती रही हैं।''

दुबे जी विवादों से सदैव दूर रहे। चाहे वह शैक्षणिक संसार हो अथवा साहित्य की शिविरबद्धता हो। वे स्पष्ट लिखते हैं- 'शिविरबद्धता मेरे वश की बात नहीं है। शिविर मुझे सीमित करने की साजिश लगता है। मेरे भीतर उदारतापूर्ण एक आध्यात्मिकता सदैव सक्रिय रहती है। ...मैं सदैव इस पक्ष में अपने को निर्धारित करता रहा हूँ कि मैं एक शिक्षक हूँ। समाज में मेरा अपना विस्तार शिक्षक के स्तर पर ही हुआ है। जो शिक्षक अपने शिविर में छात्रों को हाँककर अपनी बाड़ेबंदी करता है वह प्रचार करता है। वह छात्रों को बाँधता है। मैं ऐसा नहीं कर सकता।'

दुबे जी एक आदर्श शिक्षक और जागरूक नागरिक रहे हैं। वे शिक्षकों की उठापटक, चालबाजियाँ, कामचोरी, उनके गिरते स्तर और छात्रों की उद्दंडता से क्षुब्ध हैं। शिक्षा का गिरता स्तर इसके भीतर व्याप्त व्यावसायिकता, अवसरवादिता और शासन की रीति-नीति से वे दुखी हैं। साहित्य जगत में व्याप्त राजनीति, उठापटक और अपने-पराये की प्रवृत्ति ने साहित्य की महिमा को खंडित किया है। रचना के शब्दाडंबर ने पाठकों को साहित्य से दूर किया। पुरस्कारों की गरिमा भी लांछित हो रही है। इनमें भी अपने पराये का लेन-देन है। आये दिन के विवाद इसके प्रमाण हैं। शोध प्रबंध विश्वविद्यालयों के कबाड़खानों में पड़े सड़ रहे हैं। इसकी टोपी उसके सिर, उसकी टोपी इसके सिर रखने की प्रवृत्ति शर्मनाक है। सभी स्तर पर अनैतिकता का साम्राज्य है। गोष्ठियाँ और कवि सम्मेलन भी इस रोग से मुक्त नहीं हैं। अपनी आत्मकथा में अपने विचारों और मान्यताओं को दुबे जी ने स्पष्ट व्यक्त किया है। उनकी यह आत्मकथा उनके स्वयं के देखे-सुने और भोगे हुए अनुभवों को प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करती है।

प्राणियों में मनुष्य ही ऐसा जीव है। जिसके पास बुद्धि है, विवेक है और वाणी है। उसके जीवन की सफलता इनके सुदृढ़ योग में है। सपने देखना मनुष्य का स्वभाव है। दुबे जी सपने देखना जीवंतता का लक्षण मानते हैं। मानव जीवन दुख-सुख का समन्वय है। सफलता सुख देती है और असफलता दुख का कारण बनती है। दुबे जी ने अपने पद से उच्चपद पाने के लिए प्रारंभ में कई जगह आवेदन किया। सफलता नहीं मिली। शुरुआत में पत्र-पत्रिकाओं से रचनाएँ सखेद लौटीं। इन्हीं कटु-मधुर अनुभवों से व्यक्ति जीवन में सीखता-बढ़ता है। दृष्टि भेद मतभेद जीवन में आते हैं। परिवार में भी स्वभावगत भिन्नता स्वाभाविक है, सामान्य है। दुबे जी इससे विचलित नहीं होते। इन बातों को वे तरजीह नहीं देते हैं। आज भी परिवारिक दायित्व निभाते हुए अपनी रचना-साधना में वे संलग्न हैं और अपनी उपलब्धियों से संतुष्ट भी हैं।

आत्मकथा और जीवनी में अंतर होता है। जीवनी दूसरा व्यक्ति लिखता है। उसमें भूल-चूक हो जाती है। जीवनी में कुछ छूट भी सकता है। आत्मकथा व्यक्ति स्वयं लिखता है। उसमें भूल-चूक की गुंजाइश नहीं होती है। इसके लिए जरूरी है, लेखक की ईमानदारी। ईमानदारी ही पाठक को विश्वास में लेकर आत्मकथा को विश्वसनीय बनाती है। दुबे जी की आत्मकथा सामान्य जन की आत्मकथा है। इसमें कहीं भी बड़प्पन प्रदर्शित करने का भाव नहीं है। सब कुछ उनके जीवन से गुजरा है। भाषा-शैली भी सहज कथात्मक है।

दुबे जी की आत्मकथा के कुछ प्रसंग, मेरे अपने जीवन से मिलते-जुलते हैं। जब उन्हें पढ़ता हूँ, तो अपनी दुनिया में डूबकर भावुक हो जाता हूँ। आँखें गीली हो उठती हैं। मेरा प्रारंभिक जीवन भी अभावों और कठिनाइयों में बीता है। प्राध्यापकीय जीवन में ऐसी तमाम स्थितियों का सामना करना पड़ा। तुलसीदास ने इसलिए लिखा, 'जड़ चेतन गुण दोष मय, विश्व कीन्ह करतार।' दुबे जी की आत्मकथा कहीं भी अविश्वसनीय नहीं लगती। यह उनकी अब तक की जीवन यात्रा का पूरा दस्तावेज है।

__सम्पर्क :__ इंदौर (म.प्र.)
मो. 9425376413

कृष्णवीर सिंह सिकरवार

मुफ्त की कीमत

लघुकथा अर्थात् चार से पाँच पंक्तियों में अपनी बात को सीधे पाठकों के दिल तक पहुँचाना। बेहद खुशी होती है जब कोई महिला पेशे से इंजीनियर होने के साथ-साथ साहित्य में भी अपनी पहचान एक सशक्त लेखिका के रूप में बनाये हुए है। बीकानेर (राजस्थान) की रहने वाली इंजीनियर आशा शर्मा हिंदी साहित्य मे एक जाना पहचाना नाम है। उनकी कहानियाँ, लघुकथाएँ एवं बाल रचनाएँ आज लगभग सभी पत्रिकाओं एवं समाचार पत्रों में प्रकाशित हो रही हैं। अभी तक उनकी कलम से एक काव्य संग्रह, एक लघुकथा संग्रह, एक कहानी संग्रह, एक बाल कविता संग्रह, दो बाल कहानी संग्रह सहित कुछ साझा काव्य संकलन रचित हुए हैं। इनके अलावा दूरदर्शन राजस्थान, सुदर्शन न्यूज चैनल, पत्रिका टीवी एवं आकाशवाणी बीकानेर से उनकी रचनाओं का निरंतर प्रसारण होता रहा है। उनकी रचनाओं का अंग्रेजी, नेपाली, पंजाबी, उड़िया, कन्नड़, तमिल, सिन्धी एवं राजस्थानी भाषा में भी अनुवाद हुआ है।

अगली कड़ी में लेखिका का हाल ही में विकास प्रकाशन, बीकानेर से दूसरा लघुकथा संग्रह 'मुफ्त की कीमत' प्रकाशित हुआ है। सीधे-सादे शब्दों में अपनी बात को पाठकों तक पहुँचाने का कार्य लेखिका ने कुशलतापूर्वक किया है।

प्रस्तुत लघुकथा संग्रह में लेखिका की इक्यासी लघुकथाएँ संकलित की गई हैं। सभी कहानियाँ रिश्तों की आपसी बुनावट को बहुत ही विवेचनापरक रूप से विश्लेषण करती हैं। कह सकते हैं कि यह कहानियाँ अपने आसपास के वातावरण को बखूबी परिभाषित करती हैं।

संकलन की कहानी 'टूटा हुआ फूल' सांकेतिक कहानी है। 'नसीहत' कहानी सरकारी सिस्टम के खोखलेपन को उजागर करने वाली वर्तमान समय की एक सत्यकथा है। 'साँकल', 'दहशत', 'कर्तव्य', 'चेहरा', 'सहयोग', 'बेड़ियाँ' आदि कहानियाँ कोरोना की विभीषिका को दर्शित करती हैं।

'फिजूलखर्ची' में छोटे कामगारों को बढ़ावा देने का संदेश है। 'मुफ्त की कीमत' कहानी स्त्री अस्मिता की बेहद अर्थ पूर्ण कहानी है। जो इंसान के मानसिक विकार को दर्शित करती है। आज कोई भी

कृति : मुफ्त की कीमत, लेखिका : इंजीनियर आशा शर्मा

प्रकाशक: विकास प्रकाशन, बीकानेर, मूल्य : 200/-

चीज मुफ्त में नहीं मिलती है। उसके लिए कोई न कोई कीमत अवश्य चुकानी पड़ती है। 'काम का बोझ' में अफसरशाही उत्पीड़न को बड़े ही सुन्दर तरीके से व्यक्त किया है। 'मृत्यु' कहानी साहित्य के अंदर पनपती राजनीति का एक भयानक रूप प्रस्तुत करती है। 'सोच' कहानी आरक्षण से उपजे भेदभाव को व्यक्त करती है।

लेखिका की कथा कहने की शैली पाठक को गहरी सोच में डाल देती है। इन कथाओं को पढ़ते समय ऐसा लगता है कि लेखिका ने पात्र अपने आसपास से ही उठाए हैं तथा अपनी जीवनचर्या का बखान कर रहे हैं।

कुल मिलाकर लेखिका अपनी इन छोटी-छोटी कहानियों के माध्यम से आदर्शोन्मुख यथार्थ पर केन्द्रित सृजन की पक्षधर दिखती हैं।

समग्रत: कहा जा सकता है कि आशा शर्मा जी का उक्त लघुकथा संग्रह सामाजिक सरोकारों का ऐसा गुलदस्ता है जिसमें कई प्रकार के फूल संकलित हैं, जो कई-कई प्रकार की खुशबू बिखेर रहे हैं। इस संकलन में हर आयु के पाठकों के लिए रोचक एवं सार्थक सामग्री है, जिसे पाठकों को एक बार अवश्य पढ़ना चाहिए।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*
मो. 9826583363

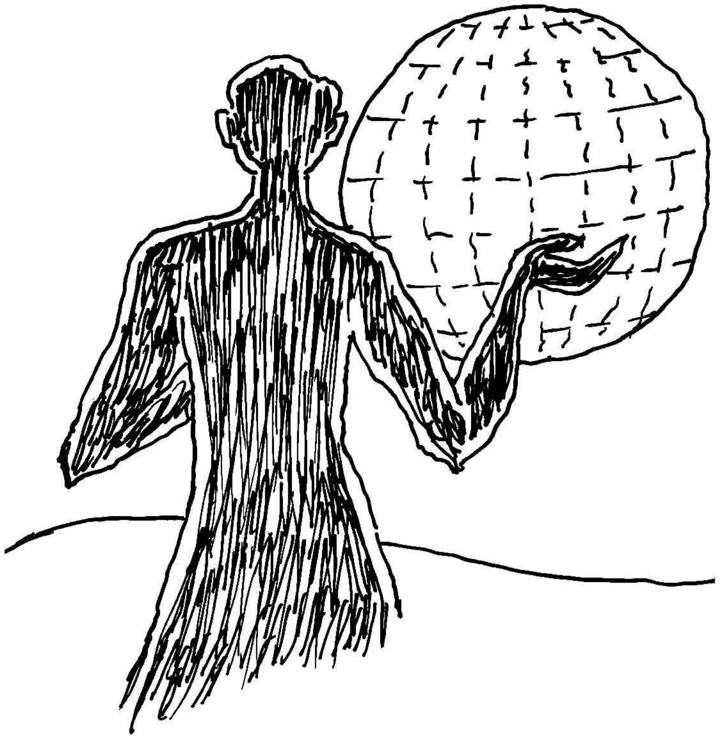

गोपाल माहेश्वरी

अग्निगर्भा काव्यकृति है टंकार

आचार्य मम्मट काव्य के प्रयोजन बताते हुए 'काव्यं यशसे, अर्थकृते, व्यवहारविदे, शिवेतरक्षतये। सद्य: परिनिर्वृत्तये, कान्तासम्मितयोपदेशयुजे' का उल्लेख करते हैं और आधुनिक काल में प्राय: काव्य का प्रयोजन 'शिवेतरक्षतये' तक भी पहुँचे बिना यशसे, अर्थकृते, व्यवहार लिए तक ही पहुँचते हुए अपने काव्योद्देश्य की पूर्ति मान लेते हैं। ऐसे रचनाकार आज अधिक देखे जाते हैं। दूसरा एक बड़ा वर्ग उन रचनाकारों का है जो सद्य: परिनिर्वृत्तये और कान्तासम्मितयोपदेशयुजे में ही वृत्ति अनुभव करते हैं। यद्यपि आचार्य मम्मट ने इन्हें सोपानों के रूप में रखा है। ऐसा मैं नहीं मानता पर प्राय: ऐसा भास होता है। यहाँ मैं समस्त शब्द का नहीं प्राय: शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ अत: कोई इसे अपने पर आक्षेप न माने। लेकिन कभी-कभी कोई ऐसा रचनाशील कवि हमारे सामने उपस्थित हो जाता है जो न यश न अर्थ न किसी को आनंदित या रिझाने मात्र के लिए रचना कर्म को तप की तरह धारण किए हुए दिखाई देता है। इतना यशोनिर्लिप्त कि कविता करके पैसा कमाना तो दूर वह तो स्वयं को 'कवि' कहलाने में भी संकुचित अनुभव करता है, जबकि उसका काव्य उद्घोष पाञ्चजन्य नाद की भाँति संपूर्ण राष्ट्र को जागरित करने का सामर्थ्य रखता है। प्रतीत होता है कि कोई पार्थ जिसने अभी-अभी गीतामृत का प्राशन किया है, शब्दों के धनुष पर विचारों की प्रत्यंचा चढ़ाए कविता नहीं रच रहा वरन् गाण्डीव की 'टंकार' कर रहा है।

डॉ. श्रीकांत का काव्य संग्रह 'टंकार' कुछ ऐसी ही अनुभूति देता है। प्राय: कवि विषय विविधाओं के उपवन में उन्मुक्त रमण करते हैं पर डॉ. श्रीकांत के सामने बिछे नभ पर केवल एकमेव केसरिया रंग दीप्त है। जिसके तले उनका राष्ट्र अपनी हर करवट, हर आहट को मानो स्वयं कवि के कानों में कह जाता हैं और कवि की लेखनी कवि होने के अहंकार से सर्वथा अलिप्त अपने सृजन-तप में निमग्न हो जाता है।

'टंकार' की रचनाओं में केवल राष्ट्रीयता की अनुगूँज है और यह अनुगूँज अत्यंत निरपेक्ष है। कवि के नयनों में केवल राष्ट्र रमा है शेष उसे न किसी राजनैतिक विचारधारा का मोह है न भय इसीलिए

कृति : टंकार (काव्य संग्रह), लेखक : डॉ. श्रीकांत
प्रकाशक : श्री सर्वोत्तम प्रकाशन, इंदौर

राजनैतिक स्वार्थवश देश पर थोपे गए अन्यायपूर्ण आपातकाल के विरुद्ध दहाड़ते हैं और सत्याग्रह के पक्ष में लिखते हैं-

परम अहिंसक क्रांति मार्ग यह तानाशाही के विरुद्ध था।
क्योंकि शासकों का दूषित मन, लोकतंत्र के प्रति अशुद्ध था।
मानवता का पावनपन भी, गिरवी रख डाला सत्ता ने।
काले-काले पृष्ठ लिखे थे, सत्तामद की कर्वसशता ने। (आपातकाल)

वहीं राम मंदिर के न्यायालयीन प्रक्रिया में विलंब की असह्यता को व्यक्त करते वे सत्ता को भी चुनौती देते हैं-

राजनीति बस राम-नाम पर, अल्प समय चल सकती है।
अटकल बाजी बहुमत को भी, तह करके रख सकती है।
राम-नाम पर सत्ता शासन, एक बार पा सकते हैं।
जीवनभर के लिए अन्यथा, सत्ता से जा सकते हैं। (न्यायालयीन की न्याय प्रतीक्षा)

इसी कविता में

'न्याय की न्याय प्रतीक्षा, अब जनमत पर भारी है।'

जैसी हुंकारों से न्याय व्यवस्था पर भी प्रश्न खड़ा करते हैं।

चीनी घुसपैठ, षड्यंत्र एवं कश्मीर में अलगाववाद और देशद्रोही गतिविधियों के प्रति अनेक कविताओं से वे राष्ट्र को सचेत करते हैं, जागृति भरते हैं और व्यवस्था को झिंझोड़ते हैं-

मूँग अभी भी दलता दुश्मन, कश्मीर की छाती पर।
अंगारे बरसाता अब भी, सत्यसनातन थाती पर।
जूँ तक नहीं रेंगती अपने, उधर हौसले बढ़ते हैं।
पावन माटी परिपाटी में, कदम अपावन गढ़ते हैं। (प्रतिशोध)

और-जा कहो चीन से खुलकर, भारत शांत न बैठेगा।
अपने अस्त्रों पर जमकर, वह भी अब धार धरेगा।
अरुणाचल की ओर बढ़ा हर हाथ टूट जाएगा।
जो भूमि छिनी भारत की, वापस उनको लाएगा। (जा पूछ चीन शासक को)

कई रचनाएँ एक स्वर साहस, शौर्य, पराक्रम का, राष्ट्रीय स्वाभिमान का और एक ही वेदना मातृभूमि के गौरव पर, अखंडता पर आघात न सहने की परंतु यह वेदना आँखों में आँसू नहीं अंगारे भरती है। एक ही कामना है इस कवि की प्रत्येक पंक्ति में और वह है 'भारत माता की जय।'

कभी-कभी लगता है 'वीरगाथा काल' साहित्य का बीता युग है, लेकिन संघर्ष तो आज के युग से भी विदा नहीं हुआ। राष्ट्र से घात करने वाले षड्यंत्री आज भी निष्क्रिय तो नहीं हैं, तब भला युवा पीढ़ी में वीरभाव का तिरोधान हो जाना तो अनिष्ट संकेत ही है। ऐसे में डॉ. श्रीकांत जैसे रचनाकार को पढ़ते हुए आशा का अरुणोदय होता है जो अपनी कविताओं में केवल और केवल राष्ट्र धर्म जीते हैं और केवल जीते नहीं जीना सिखाते भी है। संग्रह की कोई भी रचना उठा लें वीररस का सागर गर्जना करता अनुभव

होता है। भाषा विषयानुकूल, शब्द पूर्णतः सशक्त, समर्थ अभिव्यक्ति में सन्नद्ध, पंक्ति-पंक्ति ओज पगी। हिन्दी प्रायः संस्कृत निष्ठ पर प्रचलित उर्दू का भी सायास पश्य-परहेज नहीं। अलंकारिता ओढ़ाई हुई नहीं मानो कर्ण के कवच कुण्डल हों। 'दादी के दीपक बिकने दो' (आव्हान), 'अनगिन प्राण प्रसून चढ़ाकर लौटा लाए लोकतंत्र को' (आपातकाल), 'क्रूर यातना काल कोठरी काटा की, कालेपानी की' (जिनके बलिदानों की गाथा) जैसे असंख्य पंक्तियों में अनुप्रास सहज ही उल्लासित हो प्रकट होता है। 'बंगाल-बली' जैसे शब्दों का सौंदर्य और औचित्य, अपने पक्ष से कविता की श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं। कहीं-कहीं शरणगाह, पक्षाचरणी-बरदारी जैसे शब्द प्रयोग सहज अनूठे बनकर पाठक को आकर्षित करते हैं।

काव्य का प्रवाह ऐसा कि कहीं बलिदानी हुतात्माओं के विस्फुटन की पीड़ा व्यक्त करते हुए महाकवि श्रीकृष्ण 'सात्र' तो कई के स्थान पर 'दिनकर' जैसा आवेश कवि को उन्हीं का काव्यवंशज सिद्ध करता है। शिक्षा, सुरक्षा, नारी का स्थान, सीमाओं पर उत्पात, देश में विभाजनकारी शक्तियों का फण उठाना आदि कवि की मुख्य चिंताएँ हैं वह चिंताओं के ताप को चिंतन के गंगाजल से शांत करता है। हाँ उसकी यह गंगा तृप्ततरंगा है संभवतः मातृभूमि की दशा को देख उसके आकुल मन ने आँसुओं को बाहर उछालकर अपनी दुर्बलता प्रकट करने की अपेक्षा उसे अपने अंतर्मन में ही कविताधारा में घोल दिया है। इस गंगाजल में उन्हीं आँसुओं का ताप घुल गया है अथवा तो इस कविता गंगा के हिमालय से नहीं देशभक्ति के ज्वालामुखी से प्रकट होकर बह रही है।

युग चेतना से ओतप्रोत डॉ.श्रीकांत की यह कृति अत्यंत समयोचित ऊर्जा पोषण करने वाली है, जिसे पढ़ने वाला हर पाठक इसके प्रभाव को बिना गहे रह ही नहीं सकता।

सम्पर्क : इंदौर (म.प्र.)
मो. 7898395810

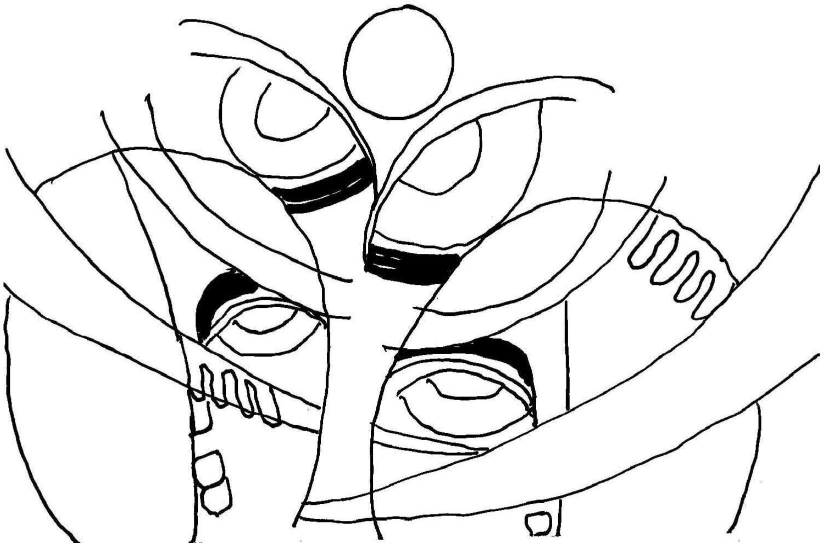

चिट्ठी

लॉकडाउन के बाद भी काफी लम्बी प्रतीक्षा रही 'साक्षात्कार' के अंक मिलने में। साक्षात्कार का अगस्त, 2020 के अंक से आपने फिर शुरुआत की। इसी बीच काफी उथल-पुथल रही। जबसे आपने संपादक का दायित्व सँभाला है। तब से साक्षात्कार में नया निखार आया है। अगस्त 2020 का अंक आश्वस्त करता है। आलेख के साथ 10-12 लोगों की कविताएँ, ग़ज़लें 8-9 लोगों की कहानियाँ और तीन लोगों की लघुकथाएँ बहुत कुछ आश्वस्त करती हैं, आपका संपादकीय बहुत कुछ आश्वस्त करता है। आपके संपादकीय से लगता है कि आप अगस्त, 2020 से नियमित अगले अंक भी प्रकाशित करते रहे हैं। इस अंक की कविताएँ, ग़ज़लें सभी अच्छी हैं। प्रत्येक अंक में लगभग इतनी ही कविताएँ रहनी चाहिए, मुक्त छंद के साथ दोहे, ग़ज़लें, गीत भी प्रकाशित करते रहिये। इस अंक की हर कहानी समस्या के समाधान के साथ वैचारिकता लिए थी। रुके हुई शब्द (विनयकुमार सिंह), सेफडिस्टेंसिंग/रामगोपाल भावुक/देह धरे का दंड (विवेक द्विवेदी) ठिया (देवेन्द्र कुमार मिश्रा) कहानियाँ सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ कही जा सकती हैं। वहीं पूनम पांडे, सीताराम गुप्ता, मीरा जैन की लघुकथाएँ आश्वस्त करती हैं। प्रत्येक अंक में 7-8 कहानियाँ 5-6 लघुकथाएँ आप अवश्य देवें। ताकि कहानियाँ अधिक से अधिक पढ़ने को मिलें।-**रमेश मनोहरा, जावरा (म.प्र.)।**

साक्षात्कार का सितम्बर, 2020 का अंक मिला तब कहानियों के बारे में निराशा हाथ लगी, कविताएँ लेख तो आश्वस्त करते हैं मगर कहानी सिर्फ एक है। इतनी कंजूसी अच्छी नहीं। कहानी प्रत्येक अंक में 7-8 होना चाहिए। आशा है आप सहानुभूति पूर्वक विचार करेंगे। हाँ साक्षात्कार के सितम्बर, 2020 के अंक से समीक्षाएँ देकर अच्छी शुरुआत करी, यह सिलसिला चलते रहना चाहिए।-**रमेश मनोहरा, जावरा (म.प्र.)।**

साक्षात्कार के नवम्बर-दिसम्बर अंक की पीडीएफ देखने को मिली। अद्भुत अंक के लिए आपको हार्दिक बधाई। आपका सम्पादकीय भी उत्कृष्ट है जिसमें जहाँ एक ओर बच्चों के भविष्य के बारे में अपने विचार व्यक्त किये हैं तो बुजुर्गों के सम्मान की चिंता और उसका हल भी उसमें सुझाया है। निश्चित ही साक्षात्कार का यह अंक आपके ही शब्दों को सार्थक करते हुए बाल साहित्य शोध के क्षेत्र में एक बड़ी उपलब्धि सिद्ध होगा। शोधार्थी इस अंक को मानक ग्रन्थ मानकर भविष्य में उपयोग करेंगे। इस महत्त्वपूर्ण अंक के लिए आपको पुनः पुनः बधाई। हार्दिक साधुवाद।-**डॉ. दिनेश पाठक शशि, मथुरा।**